संग्रहकार

बाबु मुकुन्द लाल गुप्त ।

उत्सर्ग पत्र

स्वर्गीय कविकुल कमल दिवाकर श्री १०८ गोस्वामी

तुलसीदासजी की रामायण से संगृहीत

यह 'मानस-मुक्तावली'

नामक ग्रंथ,

सत्साहित्य-रसिक, भाषाभूषण, आदर्श चरित

धार्मिक श्रेष्ठ, सर्वप्रिय हिन्दी हितव्रती,

श्रीयुत पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय

के कर कमलों में संग्रहकार द्वारा

सादर समर्पित

हुआ

साहित्य-रत्न प० अयोध्यासिंह उपाध्याय।

ॐ

भूमिका

सहृदय वाचक वृन्द !

भाषा कवि कुल तिलक, भगवती वीणापाणि के वर संतान, पूत चरित, महात्मा गोस्वामी तुलसीदास को भारत भूमि का कौन ऐसा विद्वान् है जो नहीं जानता ? विद्वान् क्या जो केवल अक्षर का परिचय रखते है, वे भी राम रस की वर्षा करने वाले उस लोकोत्तर महानुभाव से अपरचित नहीं । भारतवर्ष ही नहीं द्वीप द्वीपान्तर के लोग भी उस भाव राज्य के अन्य तम चक्रवर्ती भूपाल से, उस परम उदार हृदय, परमोपकारी वसुधा को कुटुम्ब मानने वाले महोदय से, अनभिज्ञ नहीं। ऐसी अवस्था मे उनसे परिचय कराने की चेष्टा भगवान भुवन भास्कर को दीप द्वारा दिखलाना होगा। जिस ग्रंथ रत्न को रचकर उस महात्मा ने अमर कीर्त्ति पाई है, ससार तम के निधन करने वाले महज्जनों में उच्च आसन लाभ किया है, उस ग्रथ रत्न के, उस रामचरितमानस के, विषय में भी उसका परिचय कराने के लिये कुछ कथन करना वातुलता मात्र होगी। क्योंकि यह वह सर्वप्रिय पवित्र ग्रंथ है, जिसका महत्व प्रत्येक हिन्दू सतान के हृदय पर अकित है—यह वह अलौकिक मणि है जो एक भावुक हिन्दू के झोपड़े मे वैसा ही चमकता है, जैसा किसी महा महिम महाराज के रत्नागार मे। यदि वावदूक विद्वानो की मति उसका चमत्कार देखकर चकित होती है, तो उसमे से उस अपूर्व रस की धारा भी निकलती है, जिसको पान कर एक साधारण मनुष्य भी मुग्ध हो जाता है। फिर उसके विषय मे कुछ कथन

करना 'छोटा मुँह बड़ी बात' होगी। इसलिये ऐसा न कर मैं प्रकृत विषय की ओर प्रवृत्त होता हूँ॥

रामचरित मानस मे अवगाहन करके लोक परलोक में अपना मुख उज्ज्वल बनाने वाले भाग्यमानो की संख्या थोड़ी नही है, ऐसे अनेक प्रातःस्मरणीय महात्मा हो गये हैं—मैं उनका पदानुसरण कर सकता हूँ–वैसा भाग्यशाली नहीं हो सक्ता। वामन हाथ उठा सकता है, पर चन्द्रमा को छू नहीं सकता। रामचरित मानस मे असंख्य अमूल्य मणि भरे पड़े है, पर वे सब के हाथ नही लगते, जिसका जैसा साधन है, वह वैसे ही फल का भागी है। मुझ में साधन नहीं, तप नहीं विद्या नहीं, बुद्धि नही, उतना साहस भी नही कि इस अलौकिक मानस मे धसूं और उसमे से अमूल्य मणि निकाल लाऊँ। मैं एक ज्ञानहीन बालक हूँ–बालक ही समान अज्ञानावस्था मे कभी कभी उसके कूल पर खेलता रहता हूँ–बहुत सी चमकती हुई वस्तुएँ सामने आती है, मुझ मे परख नही कि मै समझूँ कि वे क्या है, कैसी है, किन्तु बालक सुलभ स्वभाव वश कभी कभी उनमे से एकाध को उठा लेता हूँ, जिनको उठा लिया है, वे मेरे लिये उन मोतियों से कम नही, जिनसे मानस की शोभा है। संभव है कि वे चमकीले पोत हो परन्तु मै उनको मोती समझता हूँ–उनमे मेरा मोती जैसा ही प्यार है। मैंने उनको इकट्ठा किया है, एक डब्बे मे रक्खा है, नाम उसका 'मानस मुक्तावली' है। यही डब्बा, यही ग्रंथ रूपी डब्बा, लेकर आज आप सज्जनो की सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ। मै नही समझता आप लोग इसके मोतियो का कैसा आदर करेंगे। अथवा जिसको मै मोती समझता हूँ उसे क्या समझेंगे। मैं बालक हूँ, निस्सन्देह यह मेरा बालचापल्य है, परन्तु बालचापल्य पर भी तो रीझने वाले है। इसके अतिरिक्त संभव है कि भाग्य से दो एक मोती भी मेरे हाथ आ गये हो, यदि आप लोग

इन्हीं दो एक मोतियो के सहारे इस ग्रंथ का कुछ आदर करेंगे तो मैं बाल चापल्य,को ही अपने उत्कर्ष की चरम सीमा समझूंगा—और अपने को धन्य मानूंगा।

बालक गंभीर विषयों मे डूब नहीं सकते, उनको सीधी सादी बातो ही मे रस मिलता है, जो बातें कहावतो का काम देती है, उनको बहुत रुचती हैं, इसी से इस ग्रंथ मे इस प्रकार की रचनाओं का विशेष सग्रह मिलेगा, बरन यह संग्रह इसी विचार से किया भी गया है। मुझको इसकी आवश्यकता जान पड़ी, कुछ हमारे जैसे विचार के लोगो ने इसके लिये मुझे उत्साहित भी किया। मै ने अकसर लोगो को समय पर ऐसी रचनाएँ पढ़ते सुनी है वे समय पर वडा काम देती है, इसलिये मैं इस प्रकार की रचनाओं का सग्रह तैयार करने की लालसा को रोक न सका। संभव है यह मेरी बाल बुद्धि का ही परिचायक हो, किन्तु यदि मेरी यह बालबुद्धिता अल्प भी उपकारक होगी, थोड़ा भी हिन्दू समाज का हित करेगी, किंचित् भी देश के काम आवेगी, तो मैं अपने को कम भाग्यमान न समझूंगा।

प० जिउत बंधन त्रिपाठी से जो मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी हैं मुझको इस ग्रथ के सग्रह करने मे सहायता मिली है, इसलिये उनको धन्यवाद देते हुए मैं इस भूमिका को समाप्त करता हूँ—और अत मे त्रुटियो एव दोपो के लिये विद्वज्जन से क्षमा चाहता हूँ।

विनया वनत

मुकुन्द लाल गुप्त

कोठी अज़मत गढ़

जि० आजमगढ

ॐ

विषय सूची।

—:o:—

संख्या विषय पृष्ठांक

संख्या	विषय	पृष्ठांक
१	मंगला चरण	१
२	गुरुदेव-गुणगान	१
३	सुजन और संतजन	२
४	सत्संगति महिमा	४
५	खलवृन्द	५
६	संत और असंत	५
७	कवि दैन्य	८
८	निर्गुण ब्रह्म	६
९	विराट रूप	१०
१०	अवतार-बाद	१०
११	ईश्वर जीव भेद	११
१२	माया-परिवार और माया	१२
१३	श्रीराम-प्रभुत्व	१४
१४	राम नाम माहात्म्य	१८
१५	लोकोत्तर रामचरित	२०
१६	श्रीराम धाम	२०
१७	राम भक्ति की दुर्लभता	२२
१८	राम की शरणागत वत्सलता	२२
१९	ज्ञान और भक्ति	२३
२०	प्रिय भक्त	२६
२१	भगवदुक्तियाँ	३०
२२	अलौकिक रामराज	३३
२३	राम-विमुखता	३४

संख्या विषय	पृष्ठांक
२४—उपदेश और शिक्षा.	३६
२५—प्रार्थना और विनय... .	४३
२६—सत्य-महत्ता	४७
२७—तेजवंत की महत्ता	४८
२८—समरथ की निर्दोषता .	४८
२९—तप-महत्व ...	४८
३०—कर्म-प्राधान्य ...	४८
३१—काम-प्रताप	४९
३२—सुमित्र और कुमित्र	५०
३३—स्त्री धर्म	५०
३४—स्त्री जाति और उसका स्वभाव	५१
३५—वर्षा और शरद् वर्णन ...	५२
३६—कतिपय अनुपम चित्र	५५
३७—कतिपय हृदयविदारक दृश्य	५६
३८—कौशल्या देवी और महात्मा भरत ...	५७
३९—वसिष्ठ देव और सत्यव्रत भरत	५८
४०—वीर लक्ष्मण धीर रघुवंश मणि	५९
४१—विनयावनत निषाद ...	६०
४२—विभीषण की अभिलाषा	६१
४३—अंगद की निर्भीकता ..	६१
४४—अनुपम उपमायें और अपूर्व दृष्टांत	६२
४५—कलि-कौतुक	७६
४६—कलि-धर्म्म ...	७८
४७—पवित्र प्रश्नोत्तर	७९
४८—प्रासंगिक-पद्यावली . ..	८१

ॐ

मानस-मुक्तावली

१—मङ्गलाचरण

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवरबदन।
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धि राशि शुभ गुन सदन ॥१॥
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन ॥२॥
नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीर सागर सयन ॥३॥
कुंद इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन।
जासु दीन पर नेह, करहु कृपा मरदन मयन ॥४॥
वंदौ गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर ॥५॥

बालकाण्ड

२—गुरुदेव-गुणगान

वंदौ गुरुपद पद्म परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरि मय चूरण चारू। शमन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृत शंभुतनु विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरणी। किये तिलक गुणगण वशकरणी॥

श्रीगुरु पद नख मणिगण ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग्य उर आवहि जासू॥
उघरहिं विमल विलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भव रजनीके॥
सूझहिं रामचरित मणिमाणिक। गुप्त प्रगट जो जहँ जेहि खानिक॥

यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल वन, भूतल भूरि निधान॥

बालकाण्ड

३—सुजन और संतजन

सुजन समाज सकल गुणखानी। करौ प्रणाम सप्रेम सुबानी॥
साधु चरित शुभ सरिस कपासू। निरस विशद गुणमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बन्दनीय जेहि जग यश पावा॥
मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि निषेधमय कलिमल हरणी। कर्म कथा रविनंदिनि वरणी॥
हरि हर कथा विराजत बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
वट विश्वास अचल निज धर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा॥
सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देय सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहि अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तन, साधु समाज प्रयाग॥

बड़े सनेह लघुन पर करही। गिरि निज सिरन्हसदा तृन धरही॥
जलधि अगाध मौलि वह फेनू। सतत धरनि धरति शिर रेनू।

जिन्ह के लहै न रिपु रण पीठी । नहिं लावहिं परतिय मन डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन के नाहीं । ते नर वर थोरे जग माहीं ॥

बालकाण्ड

सुनु मुनि संतन के गुण कहऊँ । जिन्ह ते मैं उनके वश रहऊँ ॥
षट विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन शुचि सुखधामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्यसन्ध कवि कोविद योगी ॥
सावधान मानद मद हीना । धीर भक्ति पथ परम प्रवीना ॥

गुणागार ससार दुख, रहित विगत संदेह ।
तजि मम चरण सरोज प्रिय, जिन्ह के देह न गेह ॥

निज गुण श्रवण सुनत सकुचाहीं । परगुण सुनत अधिक हर्षाहीं ॥
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल स्वभाव सवहिं सन प्रीती ॥
जप तप व्रत दम संयम नेमा । गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा क्षमा मइत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
विरति विवेक विनय विज्ञाना । बोध यथारथ वेद पुराना ॥
दम्भ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत शीला ॥
सुनु मुनि साधुन के गुण जेते । कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते ॥

आरण्यकाण्ड

उमा सन्त कर इहै वड़ाई । मन्द करत जो करइ भलाई ॥

सुन्दरकाण्ड

४—सत्संगति-महिमा

मज्जन फल देखिय तत्काला । काक होहिं पिक वकहु मराला ॥
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥
वालमीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जव जेहि यतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानव सत्संग प्रभाऊ । लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥
विनु सत्संग विवेक न होई । रामकृपा विनु सुलभ न सोई ॥
सत्संगति मुद मङ्गल मूला । सोइ फल सिधि सव साधन फूला॥
शठ सुधरहिं सत्संगति पाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ॥
विधि वश सुजन कुसंगति परहीं । फणिमणिसमनिजगुणअनुसरहीं॥
विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे । शाक वणिक मणि गुण गण जैसे॥

वंदौ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय ।
अंजलि गतशुभसुमनजिमि, सम सुगंध कर दोय ॥

बालकाण्ड

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीशा । तुम्हरे दरश जाहिं अघ खीशा ॥
वड़े भाग्य पाइय सत्संगा । विनहिं प्रयास होय भव भंगा ॥

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पथ ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्ग्रंथ ॥
विनु सत्संग न हरिकथा, तेहि विनु मोह न भाग ।
मोह गये विनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥

उत्तरकाण्ड

५—खलवृन्द

बहुरि बन्दि खलगण सतिभाये। जे बिनु काज दाहिने बाँये॥
परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे॥
हरि हर यश राकेश राहु से। पर अकाज भट सहस बाहु से॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मन माखी॥
तेज कृशानु रोष महिपेशा। अघ अवगुण धन धनिक धनेशा॥
उदय केतु सम हित सबही के। कुम्भकर्ण सम सोवत नीके॥
पर अकाज लगि तनु परिहरही। जिमि हिम उपल कृषीदल गरहीं॥
बंदौ खल जस शेष सरोषा। सहसबदन बरणैं परदोषा॥
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना। परअघ सुनैं सहस दश काना॥
बहुरि शक्र सम विनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
वचन वज्र जेहि सदा पियारा। सहसनयन परदोष निहारा॥

उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
जानु पाणि युग जोरि कर, बिनती करहु सप्रीति॥

बालकाण्ड

६—संत और असंत

बंदौ संत असज्जन चरणा। दुखप्रद उभय बीच कछु वरणा॥
बिछुरत एक प्राण हरि लेही। मिलत एक दारुण दुख देही॥
उपजहि एक संग जलमाहीं। जलजजोंक जिमि गुणविलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज २ करतूती। लहत सुयश अपलोक विभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि व्याधू॥

भलो भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥
खल गह अगुण संत गुणगाहा । उभय अपार जलधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुण दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब विधि उपजाये । गनि गुण दोष वेद बिलगाये ॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना । विधि प्रपंच गुण अवगुण साना ॥
दुख सुख पाप पुण्य दिनराती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीशा । लक्ष अलक्ष रंक अवनीशा ॥
काशी मग सुरसरि कर्मनाशा । मरु मालव महिदेव गवाशा ॥
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा । निगमागम गुण दोष विभागा ॥
जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥
अस विवेक जब देहिं विधाता । तब तजि दोष गुणहिं मन राता ॥
काल स्वभाव कर्म बरिआई । भलेउ प्रकृति वश चुकइ भलाई ॥
सो सुधारि हरिजन इमि लेहीं । दलि दुख दोष विमल यश देहीं ॥
खलहु करहिं भल पाय सुसंगू । मिटहि न मलिन स्वभाव अभंगू ॥
लखि सुवेष जग वंचक जेऊ । वेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥
उघरैं अन्त न होहि निबाहू । कालनेमि जिमि रावण राहू ॥
किये कुवेष साधु सनमानू । जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहु वेद विदित सब काहू ॥
गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा । कीचड़ मिलहि नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन शुक सारी । सुमिरहिं राम देहिं गनिगारी ॥
धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिय पुराण मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता । होइ जलद जग जीवन दाता ॥

संत असंत भेद बिलगाई । प्रणतपाल मोहिं कहहु बुझाई ॥
संतन के लक्षण सुनु भ्राता । अगणित श्रुति पुराण बिख्याता ॥
संत असंतन कै अस करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटै परशु मलय सुनु भाई । निज गुण देय सुगंध बसाई ॥

ताते सुर शीशन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्री खंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु बदन यह दंड ॥

विषय अलम्पट शील गुणाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु विमद बिरागी । लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भक्ति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्राण सम मम ते प्रानी ॥
विगत काम मम नाम परायण । शाँति बिरति बिनती मुदितायन ॥
शीतलता सरलता मइत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयित्री ॥
ये सब लक्षण बसहिं जासु उर । जानहु तात संत सतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहिं । परुष वचन कबहूँ नहि बोलहिं ॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुण मंदिर सुख पुंज ॥

सुनहु असंतन केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिय न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहिं घालै हरहाई ॥
खलन्ह हृदय अति ताप विशेखी । जरहिं सदा पर सम्पति देखी ॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई । हर्षहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
वैर अकारण सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं वचन मधुर जिमि मोरा । खाहिं महा अहि हृदय कठोरा ॥

परद्रोही पर दार रत, परधन पर अपवाद ।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुयाद ॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन ॥
काहू कै जो सुनहिं बड़ाई । स्वाँस लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं विपती । सुखी भये मानहु जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार विरोधी । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं । आपु गये अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोह वश द्रोह परावा । संत संग हरि कथा न भावा ॥
अवगुण सिंधु मंद मति कामी । वेद विदूषक परधन स्वामी ॥
विप्र द्रोह सुर द्रोह विशेषा । दंभ कपट जिय धरे सुवेषा ॥

ऐसे अधम मनुज खल, कृत युग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक बृन्द वहु, होइ हैं कलियुग माहिं ॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्णय सकल पुराण वेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोविद नर ॥
नर शरीर धरि जे पर पीरा । करहि ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहिं मोह वश नर अघनाना । स्वारथ वश परलोक नसाना ॥
काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥
अस विचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक । भजहिं मोहिंसुर नर मुनिनायक ॥
संत असंतन के गुण भाखे । ते न परहिं भव जिन्ह लख राखे ॥

उत्तरकाण्ड

७—कवि-दैन्य

सूझ न एकौ अग उपाऊ । मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥
मति अति नीच ऊँच रुचि आछी । चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ॥

छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहहि बाल बचन मन लाई॥
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषण भूषण धारी॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका॥
जे पर भनित सुनत हरखाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाँहीं॥
जग बहु नर सुरसरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सुकृति सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

भाग छोट अभिलाष बड़, करउँ एक विश्वास।
पावहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास॥

कवि न होउँ नहिं बचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
कबित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागज कोरे॥
विधु बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगर प्रसंग सुगंध बसाई॥

प्रिय लागइ अति सबहिं मम, भनित राम यश संग।
दारु विचारु कि करइ कोउ, वंदिय मलय प्रसंग॥
श्याम सुरभि पय विशद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम यश, गावहिं सुनहिं सुजान।

बालकाण्ड

८—निर्गुण ब्रह्म

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी॥

तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्राण बिनु बास अशेषा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी । महिमा जासु जाइ नहिं बरणी ॥

बालकाण्ड

९—विराट रूप

पद पाताल शीश अज धामा । अपर लोक अँग अँग विश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ॥
जासु घ्राण अश्विनी कुमारा । निशि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवण दिशा दश वेद बखानी । मारुत स्वाँस निगम निज बानी ॥
अधर लोभ यम दशन कराला । माया हाँस बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अम्बुपति जीहा । उतपत पालन प्रलय समीहा ॥
रोम राजि अष्टादश भारा । अस्थि शैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अध गो यातना । जग मय प्रभु की बहुत कलपना ॥

अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान ।
मनुज वास चर अचर मय, रूप राम भगवान ॥

लङ्काकाण्ड

१०—अवतार-वाद

सोइ सच्चिदानंद घन रामा । अज विज्ञान रूप बल धामा ॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनता । अखिल अमोघ शक्ति भगवंता ॥
अगुण अदभ्र गिरा गोतीता । समदर्शी अनवद्य अजीता ॥
निर्मल निराकार निर्मोहा । नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी । ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी ॥
इहाँ मोह कर कारण नाहीं । रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥

भक्तहेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप ।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥
यथा अनेकन बेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव दिखावई, आपु न होइ न सोइ ॥

अस रघुपति लीला उरगारी । दनुज बिमोहनि जन सुखकारी ॥
जे मति मलिन विषय बस कामी । प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ॥
नयन दोष जाकहँ जब होई । पीत बरण शशि कहँ कह सोई ॥
जब जेहि दिशि भ्रम होइ खगेशा । सो कह पच्छिम उगेउ दिनेशा ॥
नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहि न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परस्पर मिथ्या बादी ॥
हरि विषयक अस मोह बिहंगा । सपनेहु नहिं अज्ञान प्रसंगा ॥
माया बस मतिमंद अभागी । हृदय जवनिका बहु बिधि लागी ॥
ते शठ हठ वश संशय करहीं । निज अज्ञान राम पर धरहीं ॥

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहि रघुपतिहि, मूढ़ पडे तम कूप ॥

उत्तरकाण्ड

११—ईश्वर-जीव-भेद

ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, कहहु सकल समुझाइ ।
जातें होय चरण रति, शोक मोह भ्रम जाइ ॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई । सुनहु तात मति मम चितलाई ॥
मै अरु मोर तोर तैं माया । जेहि वस कीन्हे जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानहु भाई ॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा । जा वश जीव परा भव कूपा ॥
एक रचै जग गुण वश जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥
ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिय तात सो परम विरागी । तृण सम सिद्ध तीन गुण त्यागी ॥

माया ईश न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव ।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव ॥

आरण्यकाण्ड

लागे करन ब्रह्म उपदेशा । अज अद्वैत अगुण हृदयेशा ॥
अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभव गम्य अखंड अनूपा ॥
मन गोतीत अमल अविनाशी । निर्विकार निर्वधि सुख राशी ॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा । वारि वीचि इव गावहि वेदा ॥

उत्तरकाण्ड

१२—माया-परिवार और माया

मोह न अंध कीन्ह कहु केही । के जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बउराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविंद गुण आगार ।
केहि कै लोभ विडम्बना, कीन्ह न येहि संसार ॥
श्री मद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि लोचन शर, के अस लागि न जाहि ॥

गुण कृत सन्निपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निवेही ॥
यौवन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर यश न नशावा ॥
मत्सर काहि कलङ्क न लावा । काहि न शोक समीर डुलावा ॥

चिन्ता साँपिनि केहि नहिं खाया। को जग जाहि न व्यापी माया॥
कीट मनोरथ दारु शरीरा। केहि न लागि घुन को अस धीरा॥
सुत वित नारि ईषणा तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरणै पारा॥
शिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कपट प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखंड॥
सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहौं पद रोपि॥

ज्ञान अखंड एक सीता वर। माया वश्य जीव सचराचर॥
जौं सब के रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहौ कस॥
माया वश्य जीव अभिमानी। ईश वश्य माया गुण खानी॥
परवश जीव स्ववश भगवंता। जीव अनेक एक श्री कंता॥
द्विविध भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।
ज्ञानवंत अपि सो नर, पशु बिनु पुच्छ विषान॥

ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेशा। मिटइ न जीवन केर कलेशा॥
हरि सेवकहिं न व्यापि अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापक तेहि विद्या॥
ताते नाश न होइ दास कर। भेद भक्ति बाढ़इ विहंग वर॥

प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस प्रानी॥

उत्तरकाण्ड

१३—श्रीराम-प्रभुत्व

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि।
यदपि मृषा तेहि काल सोइ, भ्रम न सकइ कोइ टारि॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
राम कीन्ह चाहैं सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहिं कोई॥
अति प्रचंड रघुपति कर माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

बालकाण्ड

यदपि विरज व्यापक अविनाशी। सब के हृदय निरंतर वासी॥
तदपि अनुज सिय सहित खरारी। बसत मनस मम कानन चारी॥

आरण्यकाण्ड

गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल शितलाई॥
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही। राम कृपा करि चितवहि जाही॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरन्तर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥
सब विजयी विनयी गुण सागर। तासु सुयश त्रैलोक उजागर॥

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई॥

ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल।
तव प्रताप बड़वा नलहिं, जारि सकै खलु तूल॥

राम कृपा बल पाइ कपिन्दा। भये पच्छ युत मनहुँ गिरिन्दा॥

सुन्दरकाण्ड

नाथ वैर कीजिय ताही सों । बुधि बल सकिय जीति जाही सें॥
तुमहिं रघुपतिहिं अन्तर कैसा । खलु खद्योत दिनकरहिं जैसा ॥
अति बल मधुकैटभ जेहि मारे । महावीर दिति सुत संहारे ॥
जेहि बलि बाँधि सहस भुज मारा । सोइ अवतरेउ हरण महि भारा ॥
तासु विरोध न कीजिय नाथा । काल कर्म जिव जाके हाथा ॥

रामहिं सौंपिय जानकी, नाइ कमल पद माथ ।
सुत कहँ राज समर्पि वन, जाइ भजिय रघुनाथ ॥

नाथ दीनदयाल रघुराई । बाघउ सन्मुख गये न खाई ॥
चाहिय करन सो सब कर बीते । तुम सुर असुर चराचर जीते ॥
सत कहहिं अस नीति दशानन । चौथेपन नृप जाइहिं कानन ॥
तासु भजन कीजिय तहँ भर्ता । जो कर्ता पालन सहर्ता ॥
सोइ रघुवीर प्रणत अनुरागी । भजहु नाथ ममता मद त्यागी ॥
मुनिवर यतन करहिं जेहि लागी । भूप राज तजि होहिं विरागी ॥
सोइ कोशलाधीश रघुराया । आयउ करन तोहिं पै दाया ॥
जो पिय मानहु मोर सिखावन । होइ सुयश तिहुँ पुर अति पावन ॥

अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कम्पित गात ।
नाथ भजहु रघुवीर पद, अचल होइ अहिवात ॥

जासु चलत डोलत इमि धरणी । चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरणी ॥
सहस बाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सम जासु कुठारा ॥
जासु परशु सागर खर धारा । बूड़े नृप अगणित बहु बारा ॥
तासु गर्व जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दशशीश अभागा ॥
राम मनुज कस रे शठ बंगा । धन्वी काम नदी पुनि गङ्गा ॥
पशु सुर धेनु कल्पतरु रूखा । अन्न दान अरु रस पीयूषा ॥

वैनतेय खग अहि सहसानन। चिन्ता मणि किमि उपल दशानन॥
सुनु मतिमन्द लोक वैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥

उमा राम की भृकुटि विलासा। होय विश्व पुनि पावै नासा॥

तृण ते कुलिश कुलिश तृण करई। तासु दूत प्रण कहु किमि टरई॥

उमा राम मृदु चित करुणाकर। वैर भाव सुमिरत मोहिं निश्चर॥
देहिं परम गति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी॥
जे अस प्रभु न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमन्द ते परम अभागी॥

जासु प्रबल माया विवश, शिव विरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावइ निशिचर, निज माया मति खोट॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुअन चारि दश आसू॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहि सुर नर अग जग जाही॥
यह कौतूहल जानइ सोई। जापर कृपा राम कर होई॥

अहंकार ममता मद त्यागू। महा मोह निशि सोवत जागू॥
काल काल कर भक्षक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिय सोई
भृकुटि भङ्ग कालहिं जो खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥
जग पावनि कीरति विस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥

गिरिजा जासु नाम जपि, मुनि काटहि भव पास।
सो कि बंध तर आवई, व्यापक विश्व निवास॥

चरित राम के सगुण भवानी । तर्कि न जाइ बुद्धि बल बानी ॥
अस विचारि जे तज्ञ विरागी । रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ॥

जानेउ मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं ।
जेहि नमत शिव ब्रह्मादि सुरपिय भजेहु नहि करुणा मयं ॥
आजन्म ते पर द्रोह रत पापौघ मय तव तनु अयं ।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं ॥

अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिन्धु नहिं आन ।
मुनि दुर्लभ जो परम गति, तोहि दीन्ह भगवान ॥
लंका काण्ड

कुलिशहुँ चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहुँ चाहि ।
चित खगेश अस राम कर, समुझि परइ कहु काहि ।

जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपतिचरित न बरणि सिराहीं ॥

जेमि शिशु तनु व्रण होइ गुसाईं । मातु चिराव कठिन की नाईं ॥
यदपि प्रथम दुख पावई, रोवइ बाल अधीर ।
व्याधि नाश हित जननी, गनत न सो शिशु पीर ॥
तिमि रघुपति निज दास कर, हरहिं मान हित लागि ।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजेसि भ्रमत्यागि ॥

पाइ न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु शठ मना ।
गणिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥

आभीर यवन किरात खल श्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारेक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

रघुवंश भूषण चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ विनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सुन्दर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्वाण पद सम आन को॥

जाकी कृपा लवलेश ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायउ परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

उत्तरकाण्ड

१४—राम नाम माहात्म्य

वंदौं राम नाम रघुबर के। हेतु कृशानु भानु हिम कर के॥
विधि हरि हर मय वेद प्राण से। अगुण अनूपम गुण निधान से॥
महा मंत्र जोइ जपत महेशू। काशी मुक्ति हेतु उपदेशू॥
महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ सिद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि शिववानी। जपि जेही पिय संग भवानी॥
हरपे हेतु हेरि हर ही कौ। किय भूपण तिय भूषण तीकौ॥
नाम प्रभाउ जान शिव नीके। कालकूट फल दीन्ह अमीके॥

वरपाऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास।
राम नाम वर वरण युग, श्रावण भादौ मास॥

अक्षर मधुर मनोहर दोऊ। वरण विलोचन जन जियजोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके । राम लखन समप्रिय तुलसी के ॥
बरणत बरण प्रीति बिलगाती । ब्रह्म जीव सम सहज संघाती ॥
नर नारायण सरिस सुभ्राता । जग पालक विशेष जन त्राता ॥
भक्ति सुतिय कलकरण विभूषण । जग हित हेतु विमल बिधु पूषण ॥
स्वादुतोष सम सुगति सुधा के । कमठ शेष सम धर वसुधा के ॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से । जीह जसोमति हरि हल धर से ॥

एक छत्र एक मुकुट मणि, सब बरणन पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरण बिराजत दोउ ॥

बालकाण्ड

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥

कर्मनाश जो सुरसरि परई । तेहि को कहहुशीश नहिं धरई ॥
उलटा नाम जपत जग जाना । वालमीकि भये ब्रह्म समाना ॥

श्वपच शवर खस यमन जड़, पाँवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥

अयोध्या काण्ड

राम नाम विनु गिरा न सोहा । देखु विचारि त्यागि मदमोहा ॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषण भूषित वर नारी ॥
राम विमुख सम्पति प्रभुताई । जाइ रही पाई विनु पाई ॥

सुन्दर काण्ड

१५—लोकोत्तर रामचरित

रामचरित चिन्तामणि चारू । संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुण ग्राम राम के । दानि मुक्ति धन धर्म धाम के ॥
सद् गुरु ज्ञान विराग योग के । विबुध वैद्य भव भीम रोग के ॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के । बीज सकल व्रत धरम नेम के ॥
शमन पाप संताप शोक के । प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति विचार के । कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥
काम कोह कलिमल करिगण के । केहरि शावक जन मन वन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद घन दारिद दवारि के ॥
मंत्र महा मणि विषय व्याल के । मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरण मोहतम दिनकर कर से । सेवक शालिपाल जलधर से ॥
अभिमत दानि देव तरु वर से । सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ॥
सुकवि शरद नभ मन उडुगण से । रामभक्ति जन जीवन धन से ॥
सकल सुकृत फल भूरि भोग से । जगहित निरुपधि साधु लोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से । पावन गंग तरंग माल से ॥

कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड ।
दहन राम गुण ग्राम इमि, ईंधन अनल प्रचंड ॥

बाल काण्ड

१६—श्रीराम धाम

जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिन के हिय तुम कहं गृह रूरे
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरश जलधर अभिलाषे
निदरहिं सिंधु सरित सर वारी । रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक

यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु ।
मुक्ता हल गुन गन चुनइ, राम बसहु मन तासु ॥
प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहहिं नित नासा ॥
तुमहिं निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय विशेखी ॥
कर नित करहिं रामपद पूजा । राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन के मन माहीं ॥
मन्त्र राज नित जपहिं तुम्हारा । पूजहि तुमहिं सहित परिवारा ॥
तर्पण होम करहिं विधि नाना । विप्र जिमाइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्हँ ते अधिक गुरुहिं जिय जानी । सकल भाव सेवहिं सनमानी ॥
सब कर माँगहिं एक फल, राम चरण रति होउ ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥
काम क्रोध मद मान न मोहा । लोभ न छोह न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी । जागत सोवत शरण तुम्हारी ॥
तुमहिं छाँडि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं पर नारी । धन पराव विष ते विष भारी ॥
जे हर्षहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं पर विपति विशेखी ॥
जिनहिं राम तुम प्राण पियारे । तिन्ह के मन शुभ सदन तुम्हारे ॥
स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥
अवगुण तजि सब के गुण गहहीं । विप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुण जिन्ह कै जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका ॥
गुण तुम्हार समझै निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भक्त प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित वैदेही ॥

जाति पाँति धन धर्म बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुख दाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहै लव लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सर्ग नर्क अपवर्ग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु वाना॥
कर्म वचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्हँ सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह॥

अयोध्याकाण्ड

१७—राम भक्ति की दुर्लभता

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी॥
धर्मशील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सुकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी॥
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी॥
सब तें सो दुर्लभ सुरराया। राम भक्ति रत गत मद माया॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये योग जप ज्ञान विरागा॥

उत्तरकाण्ड

१८—राम की शरणागत वत्सलता

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि शम्भु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय शरण तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

शरणागत को जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पाप मय, तिनहिं विलोकत हानि॥

कोटि विप्र वध लागइ जाहू। आये शरण तजउँ नहिं ताहू॥
सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नाशहिं तबहीं॥
पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥
जो पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सन्मुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥

सुन्दरकाण्ड

१९—ज्ञान और भक्ति

सोह न राम प्रेम विनु ज्ञानू। कर्णधार विन जिमि जल यानू॥

सो सुख कर्म धर्म जर जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥

योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू॥

अयोध्याकाण्ड

धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना। ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना॥
जाते वेगि द्रवों मै भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदाई॥
सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥
भक्ति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होइ अनुकूला॥
भक्ति के साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तव मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रत अति मन माहीं॥

संत चरण पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहिं कहँ जानैं दृढ़ सेवा॥
मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद् गद् गिरा नयन वह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥

बचन कर्म मन मोर गति, भजन करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महँ, करौं सदा विश्राम॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुण चतुराई॥
भक्ति हीन नर सोहै कैसा। बिनु जल वारिद देखिय जैसा॥
नवधा भक्ति कहौं तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माही॥
प्रथम भक्ति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

गुरु पद पङ्कज सेवा, तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भक्ति मम गुण गण, करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सुवेद प्रकासा॥
छठ दम शील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥
सातव सम मोहिं मय जग देखा। मोते संत अधिक कर लेखा॥
आठव यथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हर्ष न दीना॥
नव महँ जिन्ह के एकौ होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे॥
योगि वृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई॥
मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव फल सहज सरूपा॥

गह शिशु वच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरु गाई॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी॥

जनहिं मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह विचारि पंडित मोहिं भजहीं । पायेहु ज्ञान भक्ति नहिं तजहीं ॥

आरण्यकाण्ड

जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु ।
गावहिं वेद पुराण, सुख किल हहिं हरिभक्ति बिनु ॥

जे असि भक्ति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥

सुनु खगेश हरि भक्ति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते शठ महा सिंधु बिनु तरणी । पैरि पार चाहहिं जड़ करणी ॥

ज्ञान विराग योग विज्ञाना । ये सब पुरुष सुनहु हरि जाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड़ जाती ॥
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
माया भक्ति सुनहु तुम दोऊ । नारि वर्ग जानहिं सब कोऊ ॥
पुनि रघुवीरहिं भक्ति पियारी । माया खलु नर्तकी विचारी ॥
भक्तिहिं सानुकूल रघुराया । तातें तेहि डरपत अति माया ॥
राम भक्ति निरुपम निरुपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि विलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥
अस विचारि जे मुनि विज्ञानी । याचहि भक्ति सकल सुख खानी ॥
यह रहस्य रघुनाथ कर, वेगि न जानइ कोइ ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होइ ॥

अउरउ ज्ञान भक्ति कर, भेद सुनहु सुप्रवीन ।
जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अविछीन ॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
ईश्वर अंश जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुख राशी ॥
सो माया वश भयउ गुसाईं । बँधेउ कीर मर्कट की नाईं ॥
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई । यदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब तें जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय तम मोह विशेषी । ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ॥
अस संयोग ईश जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुवरई ॥
सात्विक श्रद्धा धेनु लवाई । जो हरि कृपा हृदय बसि आई ॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा । जे श्रुति कह शुभ धर्म अचारा ॥
ते तृण हरित चरइ जब गाई । भाव बच्छ शिशु धेनु पेन्हाई ॥
नोइनिवृत्ति पात्र विश्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्म मय पय दुहि भाई । अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावइ । धृति सम जावन देइ जमावइ ॥
मुदिता मथइ विचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ लेइ नवनीता । बिमल विराग सुपरम पुनीता ॥

योग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावइ ज्ञान घृत, ममता मल जरि जाइ ॥

तब विज्ञान रूपिनी, बुद्धि विशद घृत पाइ ।
चित्त दिया भरि धरइ दृढ़, समता दियटि बनाइ ॥

तीनि अवस्था तीनि गुण, तेहि कपास तें काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करइ सुगाढ़ि ॥

एहि विधि लेसइ दीप, तेज राशि विज्ञान मय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब॥
सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप शिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा। तब भव मूल भेद भ्रम नाशा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारा॥
छोरन ग्रथि पाव जौ कोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। विघ्न अनेक करइ तब माया॥
ऋद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई॥
कल बल छल करि जाइ समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥
होइ बुद्धि जो परम सयाने। तिन्ह तनु चितव न अनहित जाने॥
जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥
जब सो प्रभञ्जन उर गृह जाई। तबहिं दीप विज्ञान बुझाई॥
ग्रथि न छूटि मिटा सुप्रकासा। बुद्धि विकल भइ विषय बतासा॥
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि विधि दीप कि बार बहोरी॥
तब फिर जीव विविध विधि, पावइ संसृति क्लेश।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ विहँगेश॥
कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक॥

ज्ञान पंथ कृपाण कै धारा। परत खगेश होइ नहिं बारा॥
जौ निर्विघ्न पंथ निर्वहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सन्त पुराण निगम आगम वद॥
राम भजत सोइ मुक्ति गुसाईं। अन इच्छित आवइ बरिआईं॥

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करइ उपाई ॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई । रहि न सकइ हरि भक्ति बिहाई ॥
अस विचारि हरिभक्त सयाने । मुक्ति निरादर भगति लोभाने ॥
भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ॥
भोजन करिय तृप्ति हित लागी । जिमि सो असन पचवइ जठरागी ॥
अस हरि भक्ति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सुहाई ॥

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि ।
भजहु रामपद पङ्कज, अस सिद्धांत विचारि ॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ, जडहि करइ चैतन्य ।
अस समरथ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य ॥

कहेउँ ज्ञान सिद्धांत बुझाई । सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर । बसइ गरुड जाके उर अंतर ॥
परम प्रकाश रूप दिन राती । नहि कछु चहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहि आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
अचल अविद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भक्ति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधा सम अरि हित होई । तेहि मणि बिनु सुख पाव न कोई ॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भक्ति मणि उर बस जाके । दुख लवलेश न सपनेहु ताके ॥
चतुर शिरोमणि ते जग माहीं । जे मणि लागि सुयतन कराहीं ॥
सो मणि यदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥
सुगम उपाइ पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहिं भट भेरे ॥
पावन पर्वत वेद पुराना । राम कथा रुचिराकर नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भक्ति मणि सब गुणखानी ॥
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भक्ति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥
अस विचारि जोइ कर सत्संगा। राम भक्ति तेहि सुलभ बिहंगा॥
ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़इ, भक्ति मधुरता जाहि॥
विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेश विचारि॥

उत्तरकाण्ड

२०—प्रिय भक्त

जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि बर डोरी॥
समदर्शी इच्छा कछु नाहीं। हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥
सगुण उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम॥

सुन्दरकाण्ड

तुम्ह अति कीन्ह मोर सेवकाई। मुख पर केहि विधि करौं बड़ाई॥
तातें मोहिं तुम अति प्रिय लागे। मम हित लागि भुवन सुख त्यागे॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहिं भाये॥
तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धर्म अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुँ ते अति प्रिय विज्ञानी॥
तिन्ह ते पुनि मोहिं प्रिय निज दासा। जेहि गति मोहि न दूसरि आसा॥

पुनि २ सत्य कहौ तोहि पाहीं। मोहिं सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
भक्ति हीन विरंचि किन होई। सब जीवन्ह सम प्रिय मोहिं सोई॥

भक्तिवंत अति नीचउ प्राणी। मोहिं प्राण प्रिय अस मम बानी॥

शुचि सुशील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुराण कह नीति अस, सावधान सुनु काग॥

एक पिता के विपुल कुमारा। होहिं पृथक गुण शील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवंत शूर कोउ दाता॥
कोउ सर्वज्ञ धर्म रत कोई। सब पर प्रीति पितहिं सम होई॥
कोउ पितु भक्त बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जानि न दूसर धर्मा॥
सो सुत प्रिय पितु प्राण समाना। यद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
यहि विधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोहिं बराबर दाया॥
तिन्ह महँ जो परि हरि मद माया। भजइ मोहिं मन बच अरु काया॥

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ।
भक्ति भाव तजि कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ॥
सत्य कहउँ खग तोहिं, शुचि सेवक मोहि प्राण प्रिय।
अस विचारि भजु मोहिं, परिहरि आस भरोस सब॥

उत्तर काण्ड

२१—भगवदुक्तियां

सुनु मुनि तोहि कहौ सह रोसा। भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा
करहुँ सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालकहिं राखु महतारी॥

आरण्य काण्ड

शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भर, घोर नर्क महँ बास॥
लंका काण्ड

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीत नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहिं सुहाई॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानइ जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहिं बरजहु भयबिसराई॥
बड़े भाग्य मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावई, शिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ॥
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंज गहइ पारस मणि खोई॥
आकर चारि लक्ष चौरासी। योनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुण घेरा॥
कबहुँक करि करुणा नर देही। देत ईश बिनु हेत सनेही॥
नर तन भव वारिधि कहँ बेरो। सन्मुख मरत अनुग्रह मेरो॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ कै पावा॥
जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मंदमति, आतमहन गति जाइ॥
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोर पुराण श्रुति गाई॥
ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन मोहिं प्रिय नहिं सोऊ॥

भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥
पुण्य पुंज बिनु मिलहि न संता। सत्संगति संसृति कर अंता॥
पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करइ द्विजसेवा॥

औरो एक गुप्त मति, सबहि कहउँ कर जोर।
शंकर भजन बिना नर, भक्ति न पावइ मोर॥

कहहु भक्ति पथ कौन प्रयासा। योग न मख जपतप उपवासा॥
सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ न कहहु कहा विश्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। यहि आचरण वश्य मैं भाई॥
बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा॥
भक्ति पक्ष हठ नहि शठताई। दुष्ट तर्क सब दूर बहाई॥

मम गुण ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानई, परानंद संदोह॥

क्षमा शील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय यथा खरारी॥
जन्मत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं व्यापिहि सोई॥
अब जनि करहि विप्र अपमाना। जानेसि संत अनंत समाना॥
इन्द्र कुलिश शिव शूल विशाला। काल दंड हरि चक्र कराला॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। विप्र द्रोह पावक सो जरई॥

उत्तर काण्ड

२२—अलौकिक रामराज

दैहिक दैविक भवतिक तापा। रामराज काहू नहि व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं सुधर्म निरत श्रुतिरीती॥
चारिहु वरण धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
रामभक्ति रत सब नर नारी। सकल परमगतिके अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज शरीरा॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लक्षणहीना॥
सब निर्दंभ धर्म रत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुणज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी॥

राम राज नभगेश सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म स्वभाव गुण, कृत दुख काहुहिं नाहिं॥

राम राज कर सुख सम्पदा। बरणि न सकैं फणीश शारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरण सेवक नर नारी॥
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन वचक्रम पति हितकारी॥

दंड यतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जितहु मनहि असस्रुनियजग, रामचन्द्र के राज॥

फलहि फलैं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज वैर विसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं वन करहिं अनंदा॥
शीतल सुरभि पवन वह मंदा। गुंजत अलि लेइ चलि मकरंदा॥
लता विटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
सस सम्पन्न सदा रह धरणी। त्रेता भइ कृतयुग कै करणी॥
प्रगटी गिरिन्ह विविध मणि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल वहहिं वर वारी। शीतल अमल स्वाद सुखकारी॥

सागर निज मर्यादा रहही। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दश दिशा विभागा॥
विधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जितनहिं काज।
मांगे वारिद देहि जल, रामचन्द्र के राज॥

जब तें राम प्रताप खगेशा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेशा॥
पूरि प्रकाश रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन शोका॥
जिन्हहिं शोक ते कहहुँ बखानी। प्रथम अविद्या निशा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
विविध कर्म गुण काल स्वभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धर्म तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ये पंकज विकसे विधि नाना॥
सुख संतोष विराग विवेका। विगत शोक ए कोक अनेका॥
यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकाश।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नाश॥

उत्तरकाण्ड

२३—राम विमुखता

मातु मृत्यु पितु शमन समाना। सुधा होइ विष सुनु हरिजाना॥
मित्र करइ शत रिपु कै करणी। ताकहँ विबुध नदी वैतरणी॥
सब जग तेहि अनलहु तें ताता। जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता॥

आरण्यकाण्ड

जगदातमा प्राण पति रामा। तासु विमुख किमि लह विश्रामा॥

वेद पुराण जासु यश गावा। राम विमुख न काहु सुख पावा

नाहि कि सम्पति सगुन शुभ, सपनेहुँ महँ विश्राम।
भूत द्रोह रत मोह वश, राम विमुख रत काम॥

तव वल नाथ डोल नित धरणी। तेज हीन पावक शशि तरणी॥
शेष कमठ सहि सकैं न भारा। सो तनु भूमि परेउ जर क्षारा॥
वरुण कुवेर सुरेश समीरा। रण सन्मुख धर काहु न धीरा॥
भुज वल जितेउ काल जिमि साईं। आज परेहु अनाथ की नाईं॥
जगत विदित तुम्हार प्रभुताई। सुत परिजन वल वरणि न जाई॥
राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनि हारा॥
तव वस विधि प्रपंच सव नाथा। सभय दिशिप नित नावहिं माथा॥
अव तव शिर भुज जम्बुक खाहीं। राम विमुख यह अनुचित नाहीं॥

लङ्काकाण्ड

शिव सेवा कै फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई॥
रामहिं भजहिं तात शिव धाता। नर पाँवर कै केतिक वाता॥
जासु चरण अज शिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी॥

कमठ पीठि जामहिं वरुवारा। वध्या सुत वरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ वरु वहु विधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥

तृषा जाइ वरु मृग जलपाना। वरु जामहि सस शीश विपाना॥
अंधकार वरु शशिहिं नसावइ। राम विमुख न जीव सुख पावइ॥
हिम तें अनल प्रगट वरु होई। विमुख राम सुख पाव न कोई॥

वारि मथे घृत होइ वरु, सिकता तें वरु तेल।
विनु हरि भजन न भव तरहिं, यह सिद्धांत अपेल॥

मशकहि करइ विरंचि प्रभु, अजहिं मशक ते हीन।
अस विचारि तजि संशय, रामहिं भजहिं प्रवीन॥

उत्तर काण्ड

२४—उपदेश और शिक्षा

सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहिं, भजिय महा माया पतिहिं॥

बालकाण्ड

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करिय सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय॥

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइय सकल प्राण की नाईं॥

पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि वादि वियानी। राम विमुख सुत ते हित हानी॥

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी। ईश देइ फल हृदय विचारी॥
करइ जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई॥

काहु न कोउ दुख सुखकर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥
योग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जन्म मरन जहँ लगि जग जालू। सम्पति विपति कर्म अरु कालू॥
धरणि धाम धन पुर परिवारू। स्वर्ग नर्क जहँ लगि व्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न होहिं कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

मोह निशा सब सोवनि हारा। देखिय स्वप्न अनेक प्रकारा॥
यहि जग यामिनि जागहिं योगी। परमारथी प्रपंच वियोगी॥
जानहिं तबै जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥
होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरण अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगति अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥

भक्त भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जाल॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुवीर चरण रत होहू॥
शिवि दधीचि हरिचंद नरेशा। सहेउ धर्म हित कोटि कलेशा॥
रंति देव वलि भूप सुजाना। धर्म धरेउ सहि संकट नाना॥
धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुराण बखाना॥

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु वैन।
ते भाजन सुख सुयश के, वसहि अमरपति ऐन॥

गुरु पितु मातु स्वामि हित वानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी॥
उचित कि अनुचित किये विचारू। धर्म जाइ शिर पातक भारू॥

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भक्त महँ जासु न रेखा॥
जाय जियत जग सो महि भारू। जननी यौवन विटप कुठारू॥

अयोध्या काण्ड

जाके डर सुर असुर डराहीं। निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं॥
सो दशशीश स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भँड़िआई॥
इमि कुपथ पग देत खगेशा। रह न तेज बल बुधि लवलेशा॥

शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित वश नहिं लेखिय॥
राखिय नारि यद्पि उर माहीं। युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं॥

तात तीनि अति प्रवल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महँ क्षोभ॥
लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि॥

आरण्यकाण्ड

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु शठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हैं कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई॥

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै छिन माहीं॥
भानु पीठि सेइय उर आगी। स्वामिहि सेइय सब छल त्यागी॥
तजि माया सेइय पर लोका। मिटहिं सकल भव संभव शोका॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम विहाई॥
सोइ गुणाज्ञ सोई बड़ भागी। जो रघुवीर चरण अनुरागी॥

किष्किधाकाण्ड

जो आपन चाहिय कल्याना । सुयश सुमति शुभगति सुखनाना ॥
सो पर नारि लिलारु गुसाईं । तजइ चौथि के चंद कि नाईं ॥

चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्टै नहिं सोई ॥
गुण सागर नागर नर जोऊ । अल्प लोभ भल कहइ न कोऊ ॥

सुमति कुमति सब के उर रहहीं । नाथ पुराण निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ, शोक धाम तजि काम ॥

तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप शायक कटि भाथा ॥
ममता तरुण तमो अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुख कारी ॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं ॥
अस प्रभु छाँड़ि भजैं जे आना । ते नर पशु बिन पूँछ विषाना ॥

सुन्दरकाण्ड

श्री रघुवीर प्रताप तें, सिंधु तरे पाखान ।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥

निश्चर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम ।
गिरिजा ते नर मंद मति, जे न भजहि श्री राम ॥

सुनहु सखा कह कृपा निधाना । जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ॥

बल विवेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईश भजन सारथी सुजाना । विरति, चर्म सन्तोष कृपाना ॥
दान परशु बुधि शक्ति प्रचंडा । वर विज्ञान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोण समाना । सम यम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्म मय अस रथ जाके । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो वीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ॥

लङ्का काण्ड

भजहु प्रणत प्रति पालक रामहिं । शोभा शील रूप गुण धामहिं ॥
जलज विलोचन श्यामल गातहिं । पुलक नयन इव सेवक त्रातहिं ॥
धृत शर रुचिर चाप तूणीरहिं । संत कंज वन रवि रणधीरहिं ॥
कमल कराल व्याल खग राजहिं । नमत राम अकाम ममता जहि ॥
लोभ मोह मृग यूथ किरातहिं । मनसिज करहरिजन सुखदातहिं ॥
संशय शोक निविड़ तम भानुहिं । दनुज गहन घन दहन कृशानुहिं ॥
जनकसुता समेत रघुवीरहिं । कस न भजहु भंजन भव भीरहि ॥
बहु वासना मशक हिम राशिहिं । सदा एक रस अज अविनाशिहि ॥
मुनि रंजन भजन महि भारहिं । तुलसि दास के प्रभुहिं उदारहिं ॥

सुनहु तात माया कृत, गुण अरु दोष अनेक ।
गुण इह उभय न देखि अहि, देखिय सो अविवेक ॥

जीवनन्मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहि तजि ध्यान ।
जे हरि कथा न करहिं रत, तिन्ह के हिय पाषान ॥

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलइ न जल बिनु नाव, कोटि यतन पचि २ मरिय॥

बिनु संतोष न काम नशाही। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहि कि कामा। थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा॥
बिनु विज्ञान कि समता आवइ। कोउ अवकाश कि नभ बिनु पावइ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
शील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाई॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ विहीन समीरा॥
कवनिउँ सिद्ध कि बिनु विश्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा॥

बिनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम॥
अस विचारि मति धीर, तजि कुतर्क संशय सकल।
भजहु राम रघुवीर, करुणाकर सुन्दर सुखद॥
भाव वस्य भगवान, सुख निधान करुणा भवन।
तजि ममता मद मान, भजिय सदा सीता रमन॥

जप तप व्रत मख सम दम दाना। विरति विवेक योग विज्ञाना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ पेमा॥

जेहि ते कुछ निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥
पन्नगारि अस नीति, श्रुति सम्मति सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परम हित॥
पाट कीट ते होइ, तेहि ते पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालइ सब कोइ, परम अपावन प्राण सम॥

स्वारथ साँच जीव कह एहा । मन क्रम वचन राम पद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग शरीरा । जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा ॥

जेहि तें नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई । तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥
रज मग परी निरादर रहई । सब कर पद प्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई । नृप किरीट पुनि नयनन्ह परई ॥
सुनु खग खगपति समुझि प्रसंगा । बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥
कवि कोविद गावहिं अस नीती । खल सन कलह न भल सन प्रीती॥
उदासीन नित रहिय गुसाईं । खल परिहरिय श्वान की नाईं ॥

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परस मणि जाके॥

पर द्रोही कि होइ निःशंका । कामी पुनि कि रहहिं निकलंका॥
वंश कि रह द्विज अनहित कीन्हे । कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे ॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी । शुभगति पाव कि परत्रिय गामी॥
भव कि परहिं परमातम विंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ पर निन्दक॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने । अघ कि रहइ हरि चरित बखाने॥
पावन यश कि पुण्य बिनु होई । बिनु अघ अयश कि पावइ कोई ॥
लाभ कि कछु हरि भक्ति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥
हानि कि जग एहि सम कछु भाई । भजिय न रामहिं नर तनु पाई ॥
अघ कि पिशुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥

सोइ सर्वज्ञ सोई गुण ज्ञाता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायण सोइ गुण त्राता । रामचरण जाकर मन राता ॥
नीति निपुण सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धांत नीक तेहि जाना ॥

सो कवि कोविद सो रण धीरा । जो छल छाँड़ि भजइ रघुवीरा ॥
धन्य सुदेश जहाँ सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुण्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोई जब सत्संगा । धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुवीर परायण, जेहि नर उपज विनीत ॥

कहियन लोभिहि क्रोधिहिं कामिहिं । जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ॥
द्विज द्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप तबहूँ ॥
साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी ॥
योगी शूर सुतापसज्ञानी । धर्म निरत पंडित विज्ञानी ॥
तरहिं न विनु सेये मम स्वामी । राम नमामि नमामि नमामी ॥

उत्तरकाण्ड

२५—प्रार्थना और विनय

अब करि कृपा देहु वर एहू । निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥

कर्म वचन मन छाँडि छल, जब लगि जन न तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहि, किये कोटि उपचार ॥

अयोध्या काण्ड

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुण रूप श्री राम ॥

अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा निःकाम ॥

यह वर माँगउँ कृपा निकेता । बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥
आरण्यकाण्ड

यदपि नाथ बहु अवगुण मोरे । सेवक प्रभुहि परइ जनि भोरे ॥
सेवक सुत पितु मातु भरोसे । रहइ अशोच बनइ प्रभु पोसे ॥
सुख सम्पति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करि हौं सेवकाई ॥
ये सब राम भक्ति के बाधक । कहहिं संत तव पद आराधक ॥
शत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं । माया कृत परमारथ नाहीं ॥

मोहिं जानि अति अभिमान वश प्रभु कहेउ राखु शरीरही ।
अस कवन शठ हठ काटि सुरतरु वारि करहिं बबूरही ॥
अब नाथ करि करुणा विलोकहु देहु यह वर माँगऊँ ।
जेहि योनि जन्मउँ कर्म वश तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥
किष्किन्धा काण्ड

मामभिरक्षय रघुकुल नायक । धृत वर चाप रुचिर कर शायक ॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन । संशय विपिन अनल सुर रंजन ॥
सगुन अगुन गुन मंदिर सुन्दर । भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन । बसहु निरंतर जन मन कानन ॥
विषय मनोरथ पुंज कंज बन । प्रबल तुषार उदार पार मन ॥
भव वारिधि मंदर पर मंदर । वारय तारय संसृति दुस्तर ॥
श्याम गात राजीव विलोचन । दीन बंधु प्रणतारति मोचन ॥

अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर॥
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन॥

लंका काण्ड

जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावही॥
करुणायतन प्रभु सद्गुणाकर देहु यह वर माँगही।
मन वचन कर्म बिकार तजि तव चरण हम अनुरागही॥

बार बार वर माँगऊँ, हर्षि देहु श्री रङ्ग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सत्संग॥

अशरण शरण विरद संभारी। मोहिं जनि तजहु भक्त हितकारी॥

मोरे प्रभु तुम्ह गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहिं विचारि कहहु नर नाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥

जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुणा मय॥
जय निर्गुण जय जय गुणसागर। सुख मंदिर सुन्दर अति आगर॥
जय इन्दिरारमण जय भूधर। अनुपम अज अनादि शोभा कर॥
ज्ञान निधान अमान मान प्रद। पावन सुयश पुराण वेद वद॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥
सर्व सर्व गत सर्व उरालय। वससि सदा हम कहँ परिपालय॥
द्वंद विपति भव फंद विभंजय। हृदि वस राम काम मद गंजय॥

परमानंद कृपायतन, मन परिपूरण काम।
प्रेम भक्ति अनपायनी, देहु हमैं श्री राम॥

देहु भक्ति रघुपति अति पावनि । त्रिविध ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रणत काम सुरधेनु कलपतरु । होइ प्रसन्न दीजिय प्रभु यह वरु ॥
भव वारिधि कुम्भज रघुनायक । सेवकसुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुण दुख दारय । दीन बंधु समता विस्तारय ॥
आस त्रास ईर्षादि निवारक । विनय विवेक विरति विस्तारक ॥
भूप मौलि मन मडन धरनी । देहि भक्ति सप्तति सरि तरनी ॥
मुनि मन मानस हंस निरंतर । चरण कमल वदित अज शकर ॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक । काल कर्म स्वभाव गुण भक्षक ॥
तारन तरन हरण सब दूषण । तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषण ॥

जप तप नियम योग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुराण अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पद पकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुन्दर ॥
छूटइ मल कि मलइ के धोये । घृत कि पाव कोउ वारि विलोये ॥
प्रेम भक्ति जल विनु रघुराई । अभि अतर मल कबहुँ न जाई ॥
सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित । सोइ गुण गृह विज्ञान अखंडित ॥
दक्ष सकल लक्षण युत सोई । जाके पद सरोज रति होई ॥

नाथ एक वर माँगऊँ, राम कृपा करि देहु ।
जन्म २ प्रभु पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥

मामवलोकय पंकज लोचन । कृपा विलोकनि शोक विमोचन ॥
नील तामरस श्याम काम अरि । हृदय कंज मकरद मधुप हरि ॥
यातुधान वरूथ बल भंजन । मुनि सज्जन रञ्जन अघ गजन ॥
भूसुर शश नव वृंद बलाहक । अशरण शरण दीन जन गाहक ॥
भुज बल विपुल भार महि खडित । खरदूषण विराध वध पडित ॥
रावणारि सुख रूप भूप वर । जय दशरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥

सुयश पुराण विदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥
कारुनीक व्यलीक मद खंडन । सब बिधि कुशल कोशला मंडन॥
कलिमल मथन नाम ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रणत जन॥

भक्तिहीन गुण सब सुख कैसे । लवण बिना बहु व्यंजन जैसे ॥
भजनहीन सुख कवने काजा । अस विचार बोलेउँ खग राजा ॥
जौं प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू । मो पर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन भावत वर मागउ स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतर्यामी ॥

अविरल भक्ति विशुद्ध तव, श्रुति पुराण जो गाव ।
जेहि खोजत योगीश मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥
भक्त कल्पतरु प्रणत हित, कृपा सिंधु सुख धाम ।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुवंश निरंतर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥

उत्तर काण्ड

२६—सत्य महत्ता

नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये । वेद पुराण विदित मुनि गाये ॥

अयोध्या काण्ड

२७—तेजवंत की महत्ता

बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिय न रानी ॥
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा । सोखेउ सुयश सकल संसारा ॥
रवि मंडल देखत लघु लागा । उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥
मंत्र परम लघु जासु वश, विधि हरि हर सुर सर्व ।
महा मत्त गजराज कहँ वश कर अंकुश खर्व ॥

बालकाण्ड

२८—समरथ की निर्दोषता

जौ अहि सेज शयन हरि करहीं । बुध कछु तिन कर दोष न धरहीं॥
भानु कृशानु सर्व रस खाहीं । तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥
शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहई । सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहँ नहिं दोष गुसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

बालकाण्ड ।

२९—तप महत्व

तप बल रचइ प्रपंच विधाता । तप बल विष्णु सकल जग त्राता॥
तप बल शंभु करहिं संहारा । तप बल शेष धरहिं महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहु जाइ तप अस जिय जानी ॥

बालकाण्ड

३०—कर्म प्राधान्य

सुनि सशोच कह देवि सुमित्रा । विधिगति बडि विपरीत विचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी । बाल केलि सम विधि मति भोरी॥

कौशल्या कह दोष न काहू। कर्म विवश दुख सुख क्षति लाहू॥
कठिन कर्म गति जानि विधाता। जो शुभ अशुभ सकल फलदाता॥
ईश रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय विषहु अमी के॥

अयोध्या काण्ड

३१—काम प्रताप

सब के हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिं तरु शाखा॥
नदी उमगि अंबुधि कहँ धाई। संगम करहिं तलाव तलाई॥
जहँ अस दशा जड़न की बरणी। को कहि सकै सचेतन करणी॥
पशु पक्षी नभ जल थल चारी। भये काम वश समय बिसारी॥
मदन अंध व्याकुल सब लोका। निशिदिन नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किन्नर व्याला। प्रेत पिशाच भूत बैताला॥
इनकी दशा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध विरक्त महा मुनि योगी। तेपि काम वश भये वियोगी॥

भये काम वश योगीश तापस पामरन की को कहे।
देखहिं चराचर नारि मय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला विलोकहिं पुरुष मय जग पुरुष सब अबला मयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम कृत कौतुक अयं॥
धरा न काहू धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जेहि राखेउ रघुवीर, ते उबरे तेहि काल महँ॥

बालकाण्ड

सुरपति बसै बाहु बल जाके। नरपति रहहिं सकल रुख ताके॥
सो सुनि तिय रिसि गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
शूल कुलिश असि अँगवनि हारे। ते रतिनाथ सुमन शर मारे॥

अयोध्या काण्ड

३२—सुमित्र और कुमित्र

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज कै जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते शठ हठि कत करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुण प्रगटै अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शंक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
विपति काल कर शत गुण नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुण एहा॥
आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥
सेवक शठ नृप कृपिण कुनारी। कपटी मित्र शूल सम चारी॥

किष्किन्धा काण्ड

३३—स्त्री धर्म

कह ऋषि वधू सरल मृदुबानी। नारि धर्म कछु व्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हित कारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दान भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेइ न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखियहि चारी॥
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव यमपुर दुख नाना॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुराण संत सब कहहीं॥

उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भवतरहिं, सुनहु सीय चितलाइ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥

धर्म विचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पतिवंचक परपति रति करई । रौरव नर्क कल्प शत परई ॥
क्षण सुख लागि जन्म शत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुणाई ॥

सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहइ ।
यश गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

आरण्य काण्ड

३४—स्त्रीजाति और उसका स्वभाव

सत्य कहै कवि नारि सुभाऊ । सब विधि अगम अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिविम्ब वरुक गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ॥

विधिहु न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुण खानी ॥
सरल सुशील धर्म रत राऊ । सो किमि जानहिं तीय सुभाऊ ॥

अयोध्या काण्ड

भ्राता पिता पुत्र उर गारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ विकल सक मनहिं न रोकी । जिमि रविमणि द्रव रविहिं विलोकी॥

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुण दुखद, माया रूपी नारि॥

सुनु मुनि कह पुराण श्रुति संता। मोह विपिन कहँ नारि वसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोखइ सब वारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हर्ष प्रद वर्षा एका॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ शरद सदा सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह वृंदा। होइ हिम तिन्हहिं दहइ सुखमंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि शिशिर ऋतु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना। बंसी सम त्रिय कहहिं प्रवीना॥

अवगुण मूल शूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
तातें कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि॥

आरण्य काण्ड

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥

लंका काण्ड

३५—वर्षा और शरद वर्णन

लछिमन देखहु मोर गण, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्ति कहँ देखि॥

घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमकि रहो घन माहीं। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं॥
बरसहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये॥

बुंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहि धन खल बौराई॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी॥
सिमिटिसिमिटिजलभरहिंतलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होहिं अचल जिमि जन हरिपाई॥

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद तें, गुप्त होहिं सद्ग्रंथ॥

दादुर ध्वनि चहु ँ दिशा सुहाई। वेद पढ़ैं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भये विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका॥
अर्क जवास पात विनु भयऊ। जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहु ँ मिलै नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी॥
ससि सपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी॥
निशि तप घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा॥
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिम धर्म पराहीं॥
ऊसर वरसे तृण नहिं जामा। जिमि हरिजन उर उपज न कामा॥
विबिध जतु सकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गण उपजे ज्ञाना॥

कबहु ँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ विलाहिं।
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म नशाहिं॥
कबहु ँ दिवस महँ निविड तम, कबहु ँक प्रगट पतंग।
उपजै विनसइ ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग॥

वर्षा विगत शरद ऋतु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई॥

उदित अगस्त पंथ जल शोषा । जिमि लोभहिं सोखै संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्यागि करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पंक न रेणु सोह अस धरणी । नीति निपुण नृप की जस करणी॥
जल संकोच विकल भये मीना । अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकाशा । हरिजन इव परिहरि सब आशा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी । कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी॥

चले हर्षि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ।
जिमि हरिभक्ति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा । जिमि हरि शरण न एकौ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे । निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी । जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न शंकर द्रोही॥
शरदातप निशि शशि अपहरई । संत दरश जिमि पातक टरई ॥
देखि इंदु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरिपाई॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा । जिमि द्विज द्रोह किये कुलनास"

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाय ॥

किष्किंधा काण्ड

३६—कतिपय अनुपम चित्र

सीता सुउक्ति

शीतल सिख दाहक भई कैसे। चकइहिं शरद चाँदनी जैसे॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते॥
तन धन धाम धरणि पुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू। यम यातना सरिस संसारू॥
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं। मोकहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद विमल विधु वदन निहारे॥
को प्रभु सँग मोहिं चितवनिहारा। सिंह बधुहिं जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन योगू। तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥
प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंद तजि जाई॥

सौमित्र समालाप।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े॥
सियरे वदन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥
मै शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेइ मराला॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाइ। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई॥
मोरे सबइ एक तुम स्वामी। दीन बंधु उर अंतर्यामी॥
धर्म नीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम वचन चरण रत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई॥

जनक-नन्दिनी जीवनचर्य्या

छिन छिन पिय विधु वदन निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥
नाह नेह जिमि बढ़त बिलोकी । हर्षित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
लोकप होहिं विलोकत जासू । तेहि कि मोह सक विषय विलासू ॥

सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृण सम विषय बिलासु ।
राम प्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरज तासु ॥

अयोध्याकाण्ड

३७—कतिपय हृदयबिदारक दृश्य

सतप्त सुमन्त और प्राण कंठगत दशरथ ।

विप्र विवेकी वेद विद, सम्मत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मद पान करि, सचिव सोच तेहि भाँति ॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । पति देवता कर्म मन बानी ॥
रहै कर्म वश परिहरि नाहू । सचिव हृदय तिमि दारुण दाहू ॥
विवरण भयउ न जाइ निहारी । मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि विपुल मन व्यापी । यमपुर पंथ सोच जनु पापी ॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुरु बाम्हन गाई ॥
नगर नारि नर व्याकुल कैसे । निघटत नीर मीन गन जैसे ॥
जाइ सुमंत दीख कस राजा । अमिय रहित जनु चंद बिराजा ॥
लेइ उसाँस सोच यहि भाँती । सुर पुर तें जनु खसेउ ययाती ॥
लेत सोच भरि छिन २ छाती । जनु जरि पख परेउ संपाती ॥
जन्म मरण सब दुख सुख भोगा । हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल कर्म वश होहिं गुसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ॥

सुख हर्षहिं दुख जड़ बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥
धीरज धरहु विवेक विचारी। छाँड़िय सोच सकल हितकारी॥
तलफत विषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा॥
सुनि विलाप दुखहूँ दुख लागा। धीरज हूँ कर धीरज भागा॥
प्राण कंठ गत भयउ भुवालू। मणि बिहीन जनु व्याकुल व्यालू॥
इन्द्रिय सकल विकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज वन विनु बारी॥
कर्णधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरज धरिय तो पाइय पारू। नाहिं त बूडहिं सब परिवारू॥

प्रिया वचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ शीतल वारि॥

भरत की मर्म्म पीड़ा

भरत दुखित परिवार निहारा। मानहुँ तुहिन वनज वन मारा॥
कैकेयी हर्षित यहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू॥
पेड़ काटि तैं पल्लव सीचा। मीन जियन हित वारि उलीचा॥

हंस वंस दशरथ जनक, राम लषन से भाइ॥
जननी तू जननी भई, विधि से कछु न वसाइ॥

अयोध्याकाण्ड

३८–कौशल्या देवी और महात्मा भरत

मलिन वसन विवरण विकल, कृश शरीर दुख भार।
कनक कल्प वर बेलि वन, मानहुँ हनित तुषार॥

अजहुँ वच्छ बलि धीरज धरहू । कुसमय समय शोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी । काल कर्म गति अघटित जानी ॥
काहुहि दोष देहु जनि ताता । भा मोहिं सब विधि वाम विधाता ॥
जौं एतउ दुख मोहिं जिआवा । अजहुँ को जानै का तेहि भावा ॥

जे अघ मातु पिता गुरु मारे । गाइ गोठ महि सुरपुर जारे ॥
जे अघ तिय बालक वध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥
जे पातक उप पातक अहहीं । कर्म वचन मन भव कवि कहहीं ॥
ते पातक मोहिं देहु विधाता । जौं एहु होय मोर मत माता ॥

जे परिहरि हरि हर चरण, भजहिं भूत गण घोर ।
तिन्हकरगति मोहिंदेहुविधि, जौं जननी मत मोर ॥

वेंचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी । वेद विदूषक विश्व विरोधी ॥
लोभी लंपट लोलुप चारा । जे ताकहिं पर धन पर दारा ॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा । जौं जननी यह सम्मत मोरा ॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे । परमारथ पथ विमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई । जिन्हहिं न हरि हर सुयश सुहाई ॥
तजि श्रुतिपंथ वाम पथ चलहीं । वंचक विरचि वेष जग छलहीं ॥
तिन्ह कइ गति मोहिं शंकर देऊ । जननी जौं यहि जानउँ भेऊ ॥

अयोध्याकाण्ड

३९—वसिष्ठ देव और सत्यव्रत भरत

विधु विष चुवइ स्रवइ हिम आगी । होइ वारि चर वारि विरागी ॥
भये ज्ञान वरु मिटइ न मोहू । तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥
त तुम्हार यह जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुखसुगति न लहहीं ॥

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ॥

अस विचारि केहि देइय दोषू। व्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू॥
तात विचार करहु मन माहीं। शोच योग दशरथ नृप नाहीं॥
सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धर्म विषय लयलीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना॥
सोचिय वैश्य कृपिण धनवानू। जो न अतिथि शिव भक्ति सुजानू॥
सोचिय शूद्र विप्र अपमानी। मुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी॥
सोचिय पुनि पतिवंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निज व्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

सोचिय गृही जो मोह वश, करइ कर्म पथ त्याग।
सोचिय यती प्रपंच रत, बिगत विवेक विराग॥

वैखानस सोइ सोचन योगू। तप विहाइ जेहि भावै भोगू॥
सोचिय पिशुन अकारण क्रोधी। जननि जनक गुरु बंधु विरोधी॥
सब विधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निर्दय भारी॥
सोचनीय सब ही विधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोशल राऊ। भुअन चारि दश प्रगट प्रभाऊ॥

अयोध्या काण्ड

४०—वीर लक्ष्मण धीर रघुवंश मणि

विषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह वश होहि जनाई॥
तेऊ आज राज पद पाई। चले धर्म मर्याद मिटाई॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू॥
भरतहिं दोष देइ को जाये। जग बउराइ राजपद पाये॥

शशि गुरु तिय गामी नहुष, चढ़ेउ भूमि सुर जान॥
लोक वेद ते विमुख भा, अधम को वेणु समान॥
सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
क्षत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जान।
लातहुँ मारे चढ़त शिर, नीच को धूरि समान॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करहुँ रिसि पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥

अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सबकोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब ते कठिन राजमद भाई॥
भरतहिं होहिं न राजमद, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, क्षीरसिन्धु बिनसाइ॥
तिमिर तरुण तरनिहिं सक गिलई। गगन मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घट योनी। सहज क्षमा बरु छाँड़इ क्षोनी॥
मशक फूँक बरु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहिं भाई॥

अयोध्या काण्ड

४१—बिनयावनत निषाद

यह जिय जानि सकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृण अंकुर लेहु॥
तुम प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवा योग न भाग हमारे॥
देव काह हम तुम्हहिं गुसाईं। ईंधन पात किरात मिताई॥
यह हमार अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चुराई॥

हम जड़ जीव जीव गण घाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निशि वासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥

अयोध्या काण्ड

४२—विभीषण की अभिलाषा

देखिहउँ जाइ चरण जल जाता । अरुण मृदुल सेवक सुखदाता ॥
जे पद परसि तरी ऋषि नारी । दंडक कानन पावन कारी ॥
जे पद जनक सुता उर लाये । कपट कुरंग संग धरि धाये ॥
हर उर सर सरोज पद जेई । अहो भाग्य मैं देखिहौं तेई ॥
जिन्ह पायन के पादुकन्ह, भरत रहें मन लाय ।
ते पद आज विलोकि हौं, इन नयनन अब जाय ॥

सुन्दरकाण्ड

४३—अंगद की निर्भीकता

प्रभु आज्ञा धरि सीस, चरण वंदि अगद कहेउ ।
सोइ गुणसागर ईश, राम कृपा जापर करहु ॥

यथा मत्त गज यूथ महँ, पंचानन चलि जाइ ।
राम प्रताप सम्हारि उर, बैठ सभा शिर नाइ ॥

सुनु शठ भेद होइ मन ताके । श्री रघुवीर हृदय नहिं जाके ॥

प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति अस आहि ।
जौं मृगपति वध मेडुकन्हि, भल कि कहइ कोउ ताहि ॥

बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि यश बधे शृगाला॥
जौं असि करौं तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे कछु नहिं मनुसाई॥
अस विचारि खल बधौं न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥

मरु गल काटि निलज कुल घाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥

रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल राशि मंद मति कामी॥
सन्निपात जल्पेसि दुर्बादा। भयेसि काल वश शठ मनुवादा॥

भूमि न छाड़त कपि चरण, देखत रिपु मद भाग।
कोटि विघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग॥

लङ्काकाण्ड

४४—अनुपम उपमायें और अपूर्व दृष्टांत

लता भवन तें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ॥

अरुण उदय सकुचे कुमुद, उड़गण ज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बल हीन॥

डगै न शम्भु शरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे॥

सब नृप भये योग उपहाँसी। जैसे बिनु विराग सन्यासी॥

सो धनु राजकुँअर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिहिं हीरा॥

प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि। राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधु मडल डोल॥

लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपिण कर सोना॥

सियहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे॥

सखिन्ह सहित हर्षीं सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुख सोच बिहाइ। पैरत थके थाह जनु पाइ॥
श्रो हत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे॥
सीय सुखहिं बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती॥

रामहिं लषण बिलोकत कैसे। शशिहिं चकोर किशोरक जैसे॥

वैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहइ नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुशल अकारन कोही। सब सम्पदा चहै शिव द्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहइ॥
हरिपद विमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालच नर नाहा॥

मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे॥

मरन शील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहइ जन्म कर भूखा॥

पाव नारकी हरिपद जैसे। इन कर दर्शन हम कहँ तैसे॥

तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे॥

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नहीं॥
तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये। धर्म शील पहँ जाहिं सुहाये॥

शिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर सम्पुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोय जल अंजुलि दिये॥

सत्य गवन सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥
धूप धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन घमंड जनु ठयऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर वर्षहिं। मनहुँ बलाक अवलि मन कर्षहि॥
मंजुल मनि मय वंदनवारे। मनहुँ पाक रिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥
दुंदुभि धुनि घन गर्जनि घोरा। याचक चातक दादुर मोरा॥

पावा परम तत्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी॥
जन्म रंक जनु पारस पावा। अंधहिं लोचन लाभ सुहावा॥

मूक बदन जस शारद छाई। मानहुँ समर शूर जय पाई॥

सो मैं कहउँ कवन विधि बरनी। भूमि नाग सिर धरइ कि धरनी॥

सूख हाड़ लेइ भाग शठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जिय, तिमि सुरपतिहिं न लाज॥

मत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
नृपहिं मोद सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बँवर जनु लहइ सुसाखा॥

रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥

तेहि अवसर मगल परम, सुनि बिहँसेउ रनिवास।
शोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलास॥

हर्ष हृदय दशरथ पुर आई। जनु ग्रह दशा दुसह दुखदाई॥

देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकय लेउँ केहि भाँती॥

सादर पुनि २ पूछति ओही। शवरी गान मृगी जनु मोही॥

कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिर उकठ कुकाठू॥

पिशा कर्म प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहिय मानि मराली॥

लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तृण बलि पशु जैसे॥

सुनति बात मृदु अंत कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥

ऐसेउ पीर बिहँसि तेहि गोई । चोर नारि जिमि प्रगट न रोई ॥

सुनि मृदु बचन भूप हिय शोकू । शशिकरछुवतविकलजिमिकोकू ॥

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूँद दोउ लोचन । तनु धरि सोच लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हनेउसमूला ॥

कवने अवसर का भयउ, गयउ रानि विश्वास ॥
योग सिद्धि फल समय जिमि, यतिहि अविद्या नास ॥

कंठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन दीन बिनु पानी ॥

राम राम रटि बिकल भुआलू । जिमि बिनु पंख बिहंग बेहालू ॥

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमिय लेहिं बिष माँगी ॥

सहज सरल रघुबर बचन, कुटिल कुमति कर जान ।
चलइ जोंक जिमि वक्र गति, यद्यपि सलिल समान ॥

लागहिं कुमुखि बचन शुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥

रामहि मातु वचन सब भाये। जिमि सुरसरिगतसलिलसुहाये॥

लिये सनेह विकल उर लाई। गइमनि मनहुँ फनिक फिर पाई॥

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मन डोला॥

नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

सुनि भये विकल सकल नर नारी। बेलि विटप जिमि देखि दवारी॥
एहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विष चाहति चीखा॥
पालव बैठि पेड एइ काटा। सुख महँ शोक ठाट धरि ठाटा॥

सहमि सूखि सुनि शीतल बानी। जिमि जवास पर पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तनु थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥

धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूँदरि केरी॥

सुरसरि सुभग वनज वन चारी। डावरि योग कि हंस कुमारी॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवण पयोधि मराली॥

रपित हृदय मातु पहँ आये। मनहुँ अंध फिर लोचन पाये॥

गई सहमि सुनि वचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा ॥

कर मींजहिं शिर धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥

मनहुँ वारि नद बूड़ि जहाजू । भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥

राम दरस हित नेम व्रत, लगे करन नर नारि ।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि ॥

नतरु निपट अवलम्ब विहीना । मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक उर पारस पावा ॥

मनहु प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरे तन कह सब कोऊ ॥

यह सुधि कोल किरातन पाये । हर्षे जनु निज निधि घर आये ॥

कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ॥

महिमा कहिय कौन विधि तासू । सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥
कहि न सकहिं सुखमा जस कानन । जौ शत सहस होहिं सहसानन ॥
सो मैं वरनि कहौ विधि केही । डावर कमठ कि मंदर लेही ॥

सेवहिं लषण सीय रघुवीरहिं । जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहि ॥
बाजिबिरह गतिकहि किमिजाती । बिनुमणिविकलफणिकजेहिभाँती॥

मीजि हाथ शिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपिण धन राशि गँवाई॥
बिरद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥

भा सबके मन मोद न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥

का आचरज भरत अस करही। नहि विष वेलि अमिय फल फरहीं॥

झलका झलकत पायन कैसे। पकज कोस ओस कण जैसे॥

राम वास वन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
हर्षहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायउ रंका॥
करत प्रवेश मिटेउ दुख दावा। जनु योगिहि परमारथ पावा॥
वलकल वसन जटिल तनु श्यामा। जनु मुनि वेष कीन्ह रति कामा॥

लसत मंजु मुनि मडली, मध्य सीय रघुनन्द।
ज्ञान सभा जनु तन धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥

देखी राम दुखित महतारी। जनु सुवेलि अवली हिम मारी॥

तेहि अवसर कर हर्ष विषादू। किमि कवि कहइ मूक जिमि स्वादू॥

परी वधिक वस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली॥

राम वचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महँ विकल जहाजू॥

हमहिं अगम अति दरश तुम्हारा। जस मरु धरणि देव धुनि धारा॥

बिहरहिं वन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥

निशि न नीद नहिं भूख दिन, भरत विकल सुठि शोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल सँकोच ॥

और करइ को भरत बड़ाई । सरसि सीपि किमि सिंधु समाई ॥

शोक मगन सब सभा खँभारू । मनहुँ कमल वन परेउ तुषारू ॥

रानि कुचालि सुनत नरपालहिं । सूझ न कछु जस मणि बिनु व्यालहि ॥

कहत शारदहु कर मति हीचे । सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥

अगम सबहिं बरणत बर बरणी । जिमि जलहीन मीनगण धरणी ॥

भरत हृदय सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥

होहिं कुठाय सुबंधु सुहाये । ओड़िय हाथ असनि के घाये ॥

मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू । भा जनु गूँगहिं गिरा प्रसादू ॥

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥

रमा बिलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

तिनहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहि चाँदनि रात न भावा॥

कुमतिहि कस कुवेषिता फावी। अन अहिवात सूच जनु भावी॥

जिये मीन वरु वारि विहीना। मणिविनु फणिकजिअइदुखदीना॥

नव रसाल वन बिहरण शीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला॥

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेटिय सम्पति अति रंका॥

राम कृपाल निषाद निवाजा। परिजन परिजहि चहजसराजा॥

कीन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस ताकत शाली॥

अयोध्या काण्ड

मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहिं जनु भेंटि तमाला॥

नाक कान विनु भइ विकरारा। जनु स्रव शैल गेरु कै धारा॥

धाये निश्चर वरन वरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि यूथा॥

आइ गये वगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
यथा विलोकि अकेल, वाल रविहिं घेरत दनुज॥

विपति मोर को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥

अधम निशाचर लीन्हे जाइ। जिमि मलेच्छ वश कपिला गाई॥

धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत कहँ जैसे॥

करत विलाप जात नभ सीता। व्याध विवश जनु मृगी सभीता॥

जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह याचक भीरा॥

पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
यथा धर्म शीलन्हि के, दिन सुख संयुत जाहिं॥
फल भर नम्र विटप सब, रहे भूमि नियराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ॥

आरण्य काण्ड

जिमि हरि बधुहिं क्षुद्र सस चाहा। भयेसि कालवश निशिचर नाहा॥

अबहीं ते उर संशय होइ। वेणु मूल सुत भयउ घमोई॥

हित मत तोहि न लागत कैसे। काल विवश कहँ भेषज जैसे॥

अंगद दीख दशानन वैसा। सहित प्राण कज्जल गिरि जैसा॥
भुजा विटप शिर शृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥

भयउ तेज हत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि शशि सोहई॥

सिंहासन बैठेउ शिर नाई। मानहुँ सम्पति सकल गँवाई॥

उमा रावनहिं अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥

लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दोउ मंदर जैसे॥

प्राविट शरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥

भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं। ज्ञान उदय जिमि संशय जाहीं॥

शर समूह सो छाडइ लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥

जिमि कोउ करइ गरुड से खेला। डरपावइ गहि स्वल्प सँपेला॥

एक बाण काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥

रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जिमि अँगार राशीन्ह पर, मृतक धूम रह छाइ॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंशुक के तरु जैसे॥

यथा पंख बिनु खगपति दीना। मणि बिनु फणि करिवर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिन तोही। जौ जड दैव जिआवइ मोही॥

मुरेउ न मन तन टरेउ न टारे। जिमि गज अर्क फलनि के मारे॥

कुम्भकरण रण रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि २ खाइ। जनु टीडी गिरि गुहा समाइ॥

रण मद मत्त निशाचर दरपा । विश्वग्रसिहिजनुएहिविधिअरपा॥
सत्यसंध छाड़े शर लच्छा । काल सर्प जनु चले सपच्छा ॥

तन महँ प्रविशि निसरि शर जाहीं । जनु दामिनि घन माँझ समाहीं ॥
शोणित स्रवत सोह तनु कारे । जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे ॥
भागे भालु बलीमुख यूथा । वृक विलोकि जनु मेष वरूथा ॥
काटे भुजा सोह खल कैसा । पच्छ हीन मंदर गिरि जैसा ॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहिं बिलोका । मानहु ग्रसन चहत त्रैलोका ॥

शरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा । काल त्रोन सजीव जनु आवा ॥

राम कृपा कपि दल बल बाढ़ा । जिमि तृण पाइ लागि अति डाढ़ा ॥
छीजहिं निश्चर दिन अरु राती । निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती॥
रहे दसहुँ दिशि सायक छाई । मानहु मघा मेघ झरिलाई ॥

जाहिं कहाँ भये व्याकुल बंदर । सुरपति बंदि परे जनु मंदर ॥

चले वीर सब अतुलित बली । जन कज्जल कै आँधी चली ॥

पनव निशान घोर रव बाजहिं । महा प्रलय के घन जनु गाजहिं ॥

शत शत शर मारे दस भाला । गिरिशृंगन्हिजनुप्रविसहिंव्याला॥
प्रभु सन्मुख धाये खल कैसे । सलभ समूह अनल कहँ जैसे ॥
बहु कृपाण तरवारि चमंकहिं । जनु दस दिशि दामिनी दमंकहिं॥

निफल होइ रावण शर कैसे । खल के सकल मनोरथ जैसे ॥

बिफल होहिं सब उद्यम ताके । जिमि परद्रोह निरत मनसाके ॥

रहे छाइ नभ शिर अरु बाहू । मानहुँ अमित केतु अरु राहू ॥

जिमिजिमिप्रभु हरतासुशिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत विषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार॥

सोहहि नभ छल बल बहु करहीं। कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं॥

प्रभु छण महँ माया सब काटी। जिमि रबि उगे जाहिं तम फाटी॥

तब रघुपति लंकेश के, शीश भुजा शर चाप।
काटे भये बहुत बढ़े, जिमि तीरथ कर पाप॥

काटत बढ़हि सीस समुदाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

सुनि प्रभु वचन लाज हम मरहीं। मसक कबहुँ खगपति हितकरहीं॥

राजत राम सहित भामिनी। मेरु शृंग जनु घन दामिनी॥

लंका काण्ड

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहँ जाति नहि उपमा कही।
जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि मिले वर सुखमा लही॥

कौशल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं॥

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परवश गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी वचन मृदु बहु विधि कहे।
गइ विषम विपति वियोग भव तिन्हँ हर्ष सुख अगणित लहे॥

जो अति आतप व्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ॥

उत्तर काण्ड

४५—कलि कौतुक

वर्ण धर्म नहिं आश्रम चारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुशासन ॥
मारग सोइ जाकहँ जो भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहँ संत कहहिं सब कोइ ॥
सोइ सयान जो पर धन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूठ मसखरी जाना । कलियुग सोइ गुणवंत बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिशाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलि काला ॥

अशुभ वेष भूषण धरे, भक्षा भक्ष जे खाहिं ।
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं ॥

जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान बहु ।
मन क्रम वचन लबार, ते वक्ता कलिकाल महँ ॥

नारि विवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नर मर्कट की नाईं ॥
शूद्र द्विजन्ह उपदेशहिं ज्ञाना । मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी । वेद विप्र गुरु संत विरोधी ॥
गुण मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहि नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनी विभूषण हीना । बिधवन्ह के शृंगार नवीना ॥
गुरु शिष वधिर अंध कर लेखा । एक न सुनहि एक नहिं देखा ॥
हरइ शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥
मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं । उदर भरइ सोइ धर्म सिखावहिं ॥

ब्रह्म ज्ञान विनु नारि नर, कहहिं न दूसरि वात।
कौडी लागे लोभ वश, करहिं विप्र गुरु घात॥
वादहिं शूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्र वर, आँखि देखावहि डाँटि॥

पर तिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेद वादी ज्ञानी नर। देखेउँ मै चरित्र कलियुग कर॥
आप गये अरु औरहिं घालहि। जो कहु सत मारग प्रतिपालहि॥
कल्प कल्प भरि एक एक नर्का। परहि जे दूषहिं श्रुति करि तर्का॥
जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा। श्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुइ घर सपति नासी। मूँड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी॥
ते विप्रन्ह सन पाँव पुजावहि। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
विप्र निरत्तर लोलुप कामी। निराचार शठ वृपली स्वामी॥
शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। वैठि वरासन कहहि पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न वरणि अनीति अपारा॥

भये वर्णसंकर सकल, भिन्न सेतु सव लोग।
करहि पाप पावहि दुख, भय रुज शोक वियोग॥
श्रुति सम्मत हरि भक्त पथ, संयुत विरति विवेक।
तेहि न चलहिं नर मोह वश, कल्पहिं पंथ अनेक॥

बहु दाम सँवारहिं धाम यती। विषया हरि लीन गई विरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलिकौतुक तात न जात कही॥
कुलवंत निकारहि नारि सती। गृह आनहिं चेरि निवेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तवलों। अवला नहिं डीठ परी जवलों॥
ससुरारि पियारि लगी जव तें। रिपु रूप कुटुम्ब भये तव तें॥
नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि दंड विडम्ब प्रजा नितहीं॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहि मान पुराणन्ह वेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥

कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी। गुण दूषण व्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥
सुनु खगेश कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मंड॥
तामस धर्म करहिं सब, जप तप मख व्रत दान।
देव न वर्षहिं धरणि पर, बये न जामहिं धान॥
अबला कच भूषण भूरि क्षुधा। धन हीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारन ही॥
लघु जीवन सम्बत पंच दसा। कलपात न नाश गुमान असा॥
कलि काल बिहाल किये मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष विचार न शीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता॥
इर्षा परुषा छल लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग वियोग विशोक हये। वर्णाश्रम धर्म विचार गये॥
दम दान दया नहि ज्ञान पनी। जड़ता पर वंचन तात घनी॥
तन पोषक नारि नरा सगरे। पर निन्दक ते जग मो वगरे॥

उत्तर काण्ड

४६—कलिधर्म्म

सुनु व्यालारि कराल कलि, मल औगुण आगार।
गुणौ बहुत कलियुग कर, बिनु प्रयास निस्तार॥
कृत युग त्रेता द्वापर, पूजा मप अरु योग।
जो गति होइ सो कलिहिंहरि, नाम तें पावहिं लोग।
कृत युग सब योगी विज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहि भवप्रानी॥
त्रेता विविध यज्ञ नर करही। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरही॥

द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥
कलियुग केवल हरि गुण गाहा । गावत नर पावहि भव थाहा ॥
कलियुग योग न यज्ञ न ज्ञाना । एक अधार राम गुण गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत पाव गुण ग्रामहिं ॥
सोइ भव तर कछु संशय नाहीं । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुण्य होइ नहि पापा ॥

कलियुग सम युग आन नहि, जो नर कर विश्वास ।
गाइ राम गुण गण विमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥
प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महँ एक प्रधान ।
येन केन विधि दीन्हे, दान करइ कल्यान ॥

एहि कलिकाल न साधन दूजा । योग यज्ञ जप तप व्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिय गाइय रामहिं । संतत सुनिय रामगुण ग्रामहि ॥
जासु पतित पावन वर बाना । गावहि कवि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई । राम भजे गति के नहि पाई ॥

उत्तर काण्ड

४७—पवित्र प्रश्नोत्तर

प्रथमहि कहहु नाथ मतिधीरा । सब ते दुर्लभ कवन शरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी । सोउ संक्षेपहि कहहु विचारी ॥
सन्त असन्त मरम तुम्ह जानहु । तिन्हकर सहजस्वभाव बखानहु ॥
कवन पुण्य श्रुतिविदित विशाला । कहहु कवन अघ परम कृपाला ॥
मानस रोग कहहु समुझाई । तुम सर्वज्ञ कृपा अधिकाई ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती । मै संक्षेप कहउँ यह नीती ॥
नर तन सम नहिं कवनिउँ देही । जीव चराचर याचत तेही ।
नर्क सर्ग अपवर्ग निसेनी । ज्ञान विराग भक्ति सुख देनी ॥

सो तन धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं विषय रत मंद मंद तर ॥
काँच किरिच बदले जिमि लेहीं । कर तें डारि परस मणि देही ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही । संत मिलन सम सुख कहुँ नाही ॥
पर उपकार वचन मन काया । संत सहज सुभाव खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेत असंत अभागी ॥
भूरज तरु सम संत कृपाला । परहितनितसहविपतिविशाला ॥
सन इव खल पर बंधन करई । खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥
पर सम्पदा बिनाशि नशाही । जिमिससहतिहिमउपलबिलाहीं ॥
दुष्ट हृदय जग आरत हेतू । यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
संत उदय संतत सुखकारी । विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धर्म श्रुति विदित अहींशा । पर निन्दा सम अघ न गिरीशा ॥
हरि गुरु निन्दक दादुर होइ । जनम सहस्र पाव तन सोई ॥
द्विज निन्दक बहु नर्क भोग करि । जग जनमइ वायस शरीर धरि ॥
सुर श्रुति निन्दक जे अभिमानी । रौरव नर्क परइँ ते प्रानी ॥
होहिं उलूक संत निन्दा रत । मोह निशा प्रिय ज्ञान भानु मत ॥
सब कै निन्दा जे जड़ करही । ते चमगादुर होइ अवतरही ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा । जेहि ते दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला । तेहि तें पुनि उपजइ बहु शूला ॥
काम वात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौ तीनिउँ भाइ । उपजै सन्निपात दुखदाइ ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब शूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कडु इर्षाइ । हर्ष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डवरुआ । दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी । त्रिविध इर्षना तरुण तिजारी ॥

जुगविधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका॥

एक व्याधि वश नर मरहिं, ए असाध्य बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि॥
नेम धर्म आचार तप, ज्ञान यज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिक नहीं, रोग जाहिं हरिजान॥

सुमति सुधा बाढ़इ नित नई। विषय आस दुर्बलता गई॥
विमल ज्ञान जल जब सो न्हाई। तब रह राम भक्ति उर छाई॥
शिव अज शुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म विचार विशारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा॥
श्रुति पुराण सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भक्ति बिना सुख नाहीं॥

जासु नाम भव भेषज, हरण ताप त्रय शूल।
सो कृपालु मोहि तोहि पर, सदा रहउ अनुकूल॥

उत्तर काण्ड

४८—प्रासंगिक-पद्यावली

पायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिषकबहुँ कि कागा॥

गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

ग्रह भेषज पट पवन जल, पाइ कुयोग सुयोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग॥

सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
शशि पोषक शोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह॥

सो तन धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मंद मंद तर॥
काँच किरिच बदले जिमि लेहीं। कर तें डारि परस मणि देहीं॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही। संत मिलन सम सुख कहुँ नाही॥
पर उपकार वचन मन काया। संत सहज स्वभाव खगराया॥
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेत असंत अभागी॥
भूरज तरु सम संत कृपाला। परहितनितसहविपतिविशाला॥
सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई॥
खल विनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥
पर सम्पदा विनाशि नशाही। जिमिससहतिहिमउपलविलाहीं॥
दुष्ट हृदय जग आरत हेतू। यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥
संत उदय संतत सुखकारी। विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
परम धर्म श्रुति विदित अहींशा। पर निन्दा सम अघ न गिरीशा॥
हरि गुरु निन्दक दादुर होइ। जनम सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निन्दक बहु नर्क भोग करि। जग जनमइ वायस शरीर धरि॥
सुर श्रुति निन्दक जे अभिमानी। रौरव नर्क परइँ ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निन्दा रत। मोह निशा प्रिय ज्ञान भानु मत॥
सब कै निन्दा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जेहि ते दुख पावहि सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि तें पुनि उपजइ बहु शूला॥
काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौ तीनिउँ भाइ। उपजै सन्निपात दुखदाइ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब शूल नाम को जाना॥
ममता दादु कडु इर्षाइ। हर्ष विषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डवरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ॥
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविध इर्षना तरुण तिजारी॥

युगविधि ज्वर मत्सर अविवेका । कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका ॥

एक व्याधि वश नर मरहिं, ए असाध्य बहु व्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि ॥
नेम धर्म आचार तप, ज्ञान यज्ञ जप दान ।
भेषज पुनि कोटिक नहीं, रोग जाहिं हरिजान ॥

सुमति सुधा बाढ़इ नित नई । विषय आस दुर्बलता गई ॥
विमल ज्ञान जल जब सो न्हाई । तब रह राम भक्ति उर छाई ॥
शिव अज शुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म विचार विशारद ॥
सब कर मत खगनायक एहा । करिय राम पद पंकज नेहा ॥
श्रुति पुराण सब ग्रंथ कहाहीं । रघुपति भक्ति बिना सुख नाहीं ॥

जासु नाम भव भेषज, हरण ताप त्रय शूल ।
सो कृपालु मोहि तोहि पर, सदा रहउ अनुकूल ॥

उत्तर काण्ड

४८—प्रासंगिक-पद्यावली

वायस पालिय अति अनुरागा । होहिं निरामिषकबहुँ कि कागा ॥

गुण अवगुण जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

ग्रह भेषज पट पवन जल, पाइ कुयोग सुयोग ।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग ॥

सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।
शशि पोषक शोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह ॥

मणि माणिक मुक्ता छवि जैसी। अहि गिरि गज शिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुणी तनु पाई। लहहिं सकल शोभा अधिकाई॥
तैसइ सुकवि कवित बुध कहही। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं॥

जल पय सरिस विकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल।
विलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत पुनि॥

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं॥

यदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय विनु बोले न सँदेहा॥
तदपि विरोध मानि जहँ कोई। तहाँ गये कल्याण न होई॥

कह मुनीश हिमवंत सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥

शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा॥
मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं विचार करिय शुभ जानी॥
तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा शिर पर नाथ तुम्हारी॥

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आप सरिस सबही चह कीन्हा॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा॥
परहित लागि तजैं जो देही। संतत संत प्रशंसहि तेही॥

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गये समीप सो अवशि नसाई। अस मनमथ महेश की नाईं॥

पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव की पीरा॥
अस विचारि सोचइ जनि माता। सो न टरइ जो रचइ विधाता॥
कर्म लिखा जो बाउर नाहू। तौ कत दोष लगाइय काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि विधिकर अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका॥
करेहु सदा शंकर पद पूजा। नारि धर्म पति देव न दूजा॥
कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥
जासु भवन सुरतरु तर होई। सह कि दरिद्र जनित दुख सोई॥

गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावैं। आरत अधिकारी जहँ पावैं॥

बोले बिहँसि महेश तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहि जब, सोइ तस तेहि छन होइ॥

जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहिं डेराहीं॥

सीम कि चाँपि सकै कोइ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

शम्भु दीन्ह उपदेश हित, नहिं नारदहिं सुहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान॥

कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी। वैद्य न देइ सुनहु मुनि योगी॥

परम स्वतंत्र न शिर पर कोई। भावहि मनहिं करहु तुम्ह सोई॥

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥

मणिबिनु फणिजिमि जलबिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना॥

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

वैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥

तुलसी देखि सुवेष, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहिं पेखि, वचन सुधा सम असन अहि॥

राखै गुरु जो कोपि विधाता। गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु कर गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि शशिहि, शिर अवशेषित राहु॥

भूपति भावी मिटै नहिं, यदपि न दूषण तोर।
किये अन्यथा होय नहि, विप्र श्राप अति घोर॥

शोचहिं दूषण दैवहिं देही। बिरचत हंस काग किय जेही॥

भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्याल सम दाम॥

नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥

मोहिं अतिशय प्रतीत जिय केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

जग भल कहहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अन्तहु उर दाहू॥

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥

तृषित वारि विनु जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तड़ागा ॥

का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ॥

सेवक सोइ जो करै सेवकाई । अरि करनी करि करिय लराई ॥

पुनि पुनि मोहिं दिखाव कुठारू । चहत उड़ावन फूंकि पहारू ॥

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जो तर्जनि देखत मरि जाहीं ॥

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इन पर न सुराई ॥

बधे पाप अपकीरति हारे । मारत हू पाँ परिय तुम्हारे ॥

कोटि कुलिश सम बचन तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

अपने मुख तुम आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥
नहिं सतोष ते पुनि कछु कहहू । जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥
वीर वृत्ति तुम धीर अछोभा । गारी देत न पावहु शोभा ॥

शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप ।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर करहिं प्रलाप ॥

कैाशिक कहा छमिय अपराधू । बाल दोष गुण गनहिं न साधू ॥

जैा लरिका कछु अचगरि करहीं । गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि वश जन अनुचित करहिं, चलहिं विश्व प्रतिकूल॥

वरैं बालक एक सुभाऊ। इन्हैं न संत विदूषैं काऊ॥

ते नाहीं कछु काज विगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप वध बंध गुसाईं। मोपर करिय दास की नाईं॥
गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहुँ ते बड दोषू॥
टेढ़ जानि शंका सब काहू। वक्र चन्द्रमा ग्रसै न राहू॥

प्रभु सेवकहिं समर कस, तजहु विप्र वर रोष।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोष॥

भूप सयानक सकल सिरानी। सखिविधिगति कछुजातिनजानी॥

सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालक वचन करिय नहिं काना॥

छमहु चूक अनजानति केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी॥

हमहिं तुमहिं सरवर कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
बाल काण्ड

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥

ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती॥

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥

फोरइ योग कपार अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा॥

हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिंत मौन रहब दिन राती॥

कोउ नृप होइ हमहिं का हानी। चेरी छाँड़ि होब नहिं रानी॥

तसि मति फिरी अहइ जस भावी। रहसी चेरि घाति जनु फाबी॥

रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जल जारि करै सोइ छारा॥

का पूछेहु तुम अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पशु पहिचाना॥

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीचमते चतुराई॥

यद्यपि नीति निपुण नर नाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू॥

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाउ बरु वचन न जाई॥

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागहिं राउर माया॥

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥

दानि कहाउब अरु कृपिनाई। होइ कि षेम कुशल रउताई॥

तनु तिय तनय धाम धन धरणी। सत्यसंध कहँ तृण सम वरणी॥

फिर पछितैहसि अंत अभागी। मारेसि गाय नाहरू लागी॥

सुनु जननी सोइ सुत वड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥

तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

अयश होउ जग सुयश नसाऊँ। नर्क परउँ वरु सुरपुर जाऊँ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट राम जनि होहीं॥

धन्य जन्म जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥

चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके॥

चंद चुवइ वरु अनल कन, सुधा होइ विष तूल।
सपनेहुँ कवहुँ न करहिं कछु, भरत राम प्रतिकूल॥

जिमि भानु विनु दिन, प्राण विनु तन, चंद विनु जिमि यामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु विनु समुझ धौं जिय भामिनी॥

जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरति यहि भाँति।
जिमि चातक चातिकि तृषित, वृष्टि शरद ऋतु स्वाँति॥

गुरु श्रुति सम्मति धर्म फल, पाइय बिनहिं कलेश।
हठ वश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश॥

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताय अघाय उर, अवशि होय हित हानि॥

सेवा समय दैव वन दीन्हा। मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा॥

तजव छोभ जनि छाड़िय छोहू । कर्म कठिन कछु दोष न मोहू ॥

अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जब लगि गंग यमुन जल धारा ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवशि नर्क अधिकारी ॥

अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥

और करइ अपराध कोउ, और पाव फल भोगु ।
अति विचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु ॥

पिता जनक जग विदित प्रभाऊ । श्वसुर सुरेश सखा रघुराऊ ॥
रामचन्द्र पति सो वैदेही । सोवत महि बिधि बाम न केही ॥

सिय रघुवीर कि कानन योगू । कर्म प्रधान सत्य कह लोगू ॥

मेटि जाइ नहिं राम रजाई । कठिन कर्म गति कछु न वसाई ॥

राम लषन सिय पद शिर नाई । फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई ॥

मुनि तापस जिन ते दुख लहहीं । ते नरेश विनु पावक दहहीं ॥

मगल मूल विप्र परितोषू । दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ॥

उत्तर देउँ क्षमिय अपराधू । दुखित दोष गुण गनहिं न साधू ॥

कारण ते कारज कठिन, कछुक दोष नहिं मोर ।
कुलिश अस्थि ते उपल तें, लोह कराल कठोर ॥

ग्रह गृहीत पुनि वात वश, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पिआइय वारुणी, कहहु कवन उपचार ॥

यद्यपि मैं अनभल अपराधी । मोहिं कारण भइ सकल उपाधी॥
तदपि शरन सन्मुख मोहिं देखी । क्षमिसवकरिहहिं कृपा विशेखी॥

अहि अघ अवगुण नहिं मणि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥

करइ स्वामि हित सेवक सोई । दूषण कोटि देइ किन कोई ॥

तजउँ प्राण रघुनाथ निहोरे । दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे ॥

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछितायँ विमूढ़ा ॥

लखब सनेह सुभाय सुहाये । वैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये ॥

अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे । सहित कोटि कुल मंगल मोरे ॥

सुख स्वरूप रघुवंश मणि, मंगल मोद निधान ।
ते सोवत कुश डास महि, विधि गति अति बलवान ॥

शिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब ते सेवक धर्म कठोरा ॥

माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करहिं कुकरमू ॥

अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग याचक बानी॥

उदित सदा अथइहि कबहूँना । घटहि न नभ जग दिन २ दूना ॥

यहि दुख दाह दहै दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥

यहि कुरोग कर औषधि नाहीं । सोधेउँ सकल विश्व मन माहीं ॥

मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता । तस पूजा चाहिय जस देवता ॥

कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करइ सो तसफलचाखा॥

विनु पूछे कछु कहउँ गुसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाई ॥

नाथ सुहृद शुठि सरल चित , शील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीत जिय , जानिय आपु समान ॥

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिविध ताप ग्रह पीड़ित भारी ॥

भेंटी रघुबर मातु सब , करि प्रबोध परितोष ।
अंब ईश आधीन जग , काहु न देइय दोष ॥

तिन्ह सियनिरखिनिपटदुखपावा । सो सब सहिय जो दैव सहावा॥

जौं हठ करउँ तो निपट कुकरमू । हर गिरि तें गुरु सेवक धरमू ॥

जन्म हेतु सब कहँ पितु माता। कर्म शुभाशुभ देहिं विधाता॥

सकुचउँ तात कहत एक बाता। अर्द्ध तजहिं बुध सरबस जाता॥

आरत कहहिं विचारि न काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ॥

मैं जानउँ निज नाथ स्वभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥

यहउ कहत मोहिं आजु न शोभा। आपनिसमुझिसाधुशुचिकोभा॥

फरइ कि कोदउ बालि सुशाली। मुक्ता फरइ कि शंबुक ताली॥

सपनेहुँ दोष कलेश न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥

तात जाय जनि करहु गलानी। ईश अधीन जीव गति जानी॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाय लोक परलोक नसाई॥

तात कुतर्क करहु जनि जाये। वैर प्रेम नहिं दुरहिं दुराये॥

मुनि गण निकट विहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥

हित अनहित पशु पक्षी जाना। मानुष तन गुण ज्ञान निधाना॥

सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ विहाई॥

कहउँ वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥

सोय मातु कह विधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोरि पग टाँकी॥

सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥

देवि मोह वश सोचिय बादी। विधि प्रपंच अस अचल अनादी॥

आरत मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि ढीठ कीन अति मोहू॥

कसे कनक मणि पारिष पाये। पुरुष परखिये समय सुभाये॥

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अग्नि धूम गिरि शिर तृण धरहीं॥

रउरे अंग योग जग को है। दीप सहाय कि दिन कर सोहै॥

छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम विधाता॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धर्म कठिन जग जाना॥

स्वामि धर्म स्वारथहिं बिरोधू। वधिर अंध प्रेमहिं न प्रवोधू॥

पशु नाचत शुक पाठि प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न यह करतूति।
चातक हंस सराहिय, टेक विवेक विभूति॥
अयोध्या काण्ड

राखि न सकै न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुण दाहू॥

लिखत सुधाकर लिखिगा राहू। विधि गति वाम सदा सब काहू॥

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥

सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अतहु कीच तहाँ जहँ पानी॥

जो पामर आपनि जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाई॥
सो शठ कोटिक पुरुष समेता। बसहि कल्प शत नर्क निकेता॥

करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेम प्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम, देहि लेहु करि छोहु॥

यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहि पाप पुण्य गुण दोषू॥

मोहिं अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ वाम विधाता॥

लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुरकाज भरत के हाथा॥
अयोध्या काण्ड

जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंद मति पावन चाहा॥

संतत मोपर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥

सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनीधनशुभगतिव्यभिचारी॥
लोभी यश चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥

राजनीति विनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा॥
विद्या बिनु विवेक उपजाये। श्रम फल पढ़े किये अरु पाये॥

संग ते यती कुमंत्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान ते लाजा॥
प्रीति प्रणय बिनु मद ते गुनी। नाशहि वेगि नीति अस सुनी॥

रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।
अस कहि विविध विलाप, करि लागी रोदन करन॥

नवनि नीच की अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग विलाई॥

भय दायक खल कै प्रिय वानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

तव मारीच हृदय अनुमाना। नवहिं विरोधे नहिं कल्याना॥
शस्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी। वैद्य वंदि कवि मानस गुनी॥

परहित वश जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

पूजिय विप्र शील गुण हीना। शूद्र न गुण गण ज्ञान प्रवीना॥

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन महँ मै मतिमंद अघारी॥

आरण्य काण्ड

क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा॥

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करैं सब प्रीती॥

कह अंगद लोचन भरि वारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
यहाँ न सुधि सीता कै पाई। वहाँ गये मारहिं कपिराई॥

किष्किन्धा काण्ड

एहि सन हठ करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

नव तरु किसलय मनहुँ कृशानू। काल निशा सम निशि शशि भानू॥
कुबलय विपिन कुंत वन सरिसा। वारिद तप्त तेल जनु बरिसा॥
जेहि तरु रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वाँस सम त्रिविध समीरा॥

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥

प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख होइ न सकत मन मोरा॥

सुनु सुत तोहिं उऋण मै नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं॥

जासु दूत बल बरणि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई॥

सचिव वैद गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होहिं वेगही नास॥

तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहिं मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥

साधु अवज्ञा तुरत भवानी । कर कल्याण अखिल कै हानी ॥

जानि न जाय निशाचर माया । काम रूप केहि कारण आया ॥

सहज पाप प्रिय तामस देहा । यथा उलूकहि तम पर नेहा ॥

खल मडली वसहु दिन राती । सखा धर्म निबहै केहि भाँती ॥

वरु भल वास नर्क कर ताता । दुष्ट संग जनि देहु विधाता ॥

कादर मन कहँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥

विनय न मानत जलधि जड , गये तीन दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब , भय बिनु होय न प्रीति ॥

शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपिण सन सुन्दर नीती॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी । अति लोभी सन विरति वखानी॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा । ऊसर बीज बये फल यथा ॥

काटे पै कदली फरै , कोटि यतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेश सुनु , डांटे पै नव नीच ॥

गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कर नाथ सहज जड़ करनी ॥

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

सुन्दरकाण्ड

कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥

प्रिय बानी जे सुनहि जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
वचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते प्रभु नर थोरे॥

फूलइ फलइ न बेत, यदपि सुधा वर्षहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं विरंचि शिव॥

नाचहिं खग अनेक वारीसा। शूर न होहि ते सुनु जड़ कीसा॥

सुनु मति मंद देह अब पूरा। काटे शीश कि होइय शूरा॥

इन्द्रजालि कहँ कहिय न बीरा। काटइ निज कर सकल शरीरा॥

जरहि पतंग विमोह वश, भार वहहि खर वृन्द।
ते नहि शूर कहावहीं, समुझि देखु मतिमंद॥

कौल काम वश कृपिण विमूढ़ा। अति दरिद्र अयशी अति बूढ़ा॥
सदा रोग वश संतत क्रोधी। विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी॥
तन पोषक निन्दक अघ खानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी॥

हरि हर निन्दा सुनइ जो काना। होइ पाप गौ घात समाना॥

पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकहि उपारी॥

अहह कंत कृत राम विरोधा। काल विवश मन उपज न बोधा॥

काल दंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि विचारा॥

निकट काल जेहि आवै साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं॥

साम दाम अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहिं कहहि अस वेदा॥

सर्वस खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भयो दुर्लभ प्राना॥

सन्मुख मरण वीर कै शोभा। तब तिन्ह तजा प्राण कै लोभा॥

सुत वित नारि भवन परिवारा। होहि जाहि जग बारहिं बारा॥

अस विचारि जिय जागहु ताता। जगत न मिलहिं सहोदर भ्राता॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

जनि जल्पना करि सुयश नाशहिं नीति सुनहिं करहिं क्षमा।
संसार महँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागही।
एक कहहिं कहहिं करहि अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

लंका काण्ड

राम कथा मुनि बहु विधि वरनी। ज्ञान योनि पावक जिमि अरनी॥

उपरोहिती कर्म अति मंदा। वेद पुराण सुमृति कर निन्दा॥

राकापति षोडश उगहिं, तारा गण समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि विनु राति न जाय॥

गुरु विनु भव निधि तरइ न कोई। जौ विरचि शंकर सम होई॥

गुरु नित मोहिं प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम ।
मोहिं उपजइ अति क्रोध, दंभिहिं नीति कि भावई ॥

अधम जाति मैं विद्या पाये । भयउँ यथा अहि दूध पिआये ॥

जेहि तें नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा ॥

जौ नहिं दंड करउँ खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥

जे शठ गुरु सन ईर्षा करही । रौरव नर्क कोटि युग परही ॥

त्रिजग योनि पुनि धरहिं शरीरा । अयुत जन्म भरि पावहि पीरा ॥

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये । उपज क्रोध ज्ञानिहुँ के हिये ॥

अति संघर्षन जौं कर कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ॥

द्वैत बुद्धि बिनु क्रोध किमि, द्वैत कि बिनु अज्ञान ।
माया वश परिछिन्न जड़, जीव कि ईश समान ॥

सो मुनि ज्ञान निधान, मृगनयनी बिधुमुख निरखि ।
बिकल होहिं हरिजान, नारि विश्व माया प्रगट ॥

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सबन्हि कै करनी ॥

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहइ न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं सो संत पुनीता ॥

गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं वेद पुरान ॥

उत्तर काण्ड

॥ इति ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad